॥ श्रीहरिः ॥

श्रीभगवन्नाम-चिन्तन

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीभगवन्नाम-चिन्तन एवं नाम-महिमाके कुछ श्लोक

भगवान्‌का नाम भगवान्‌का ही अभिन्न स्वरूप है और वह भगवान्‌की ही शक्तिसे भगवान्‌से भी अधिक शक्तिशाली और ऐश्वर्यवान् है। जैसे किसी महान् वैभवशाली सम्राट्‌को अपने खजानेकी असंख्य धन-राशिकी संख्याका पता नहीं रहता, इसी प्रकार नामी भगवान् भी अपने नामकी अनन्त गुणावलियोंका पता रखना नहीं चाहते। यह भी उनका एक महान् गुण है। भगवान्‌के जिस मङ्गलमय नामसे पञ्चम पुरुषार्थरूप भगवत्प्रेमकी प्राप्ति हो सकती है, उसके बदलेमें मोक्षकी चाह करना भी प्रेमियोंने कामना माना है। अतएव लोक-परलोककी किसी भी क्षुद्र-महान् कामनामें नामका प्रयोग करना एक प्रकारसे अविवेक या मूर्खता ही है। लोक-परलोकके जो भोग हैं, सभी दुःखयोनि और विनाशी हैं, ऐसे मधुर विषरूप विषयोंकी चाह करना और नामके बदलेमें उन्हें चाहना महान् मूर्खता है।

तुलसिदास 'हरिनाम' सुधा तजि
सठ हठि पियत बिषय बिष माँगी।

अतएव बुद्धिमान् और अपना यथार्थ कल्याण चाहनेवाले पुरुषका यही कर्तव्य है कि वह अपने जीवनको भगवन्नाममय बना दे और नामके फलस्वरूप उत्तरोत्तर बढ़ती हुई नामनिष्ठाकी ही कामना करे। यही नामका आदर है और इसी भावसे नामका सेवन भी करना चाहिये।

परंतु जबतक यह भाव जाग्रत् न हो, तबतक किसी भी भावसे किसी भी सत्कामनाको लेकर नामका आश्रय लेनेमें कोई आपत्ति नहीं है। ऐसा करना मूर्खता होनेपर भी पाप नहीं है, वरं कर्तव्य है। अवश्य ही जिसमें किसी दूसरेका जरा भी अहित होता हो और परिणाममें अपना भी अहित होता हो, ऐसे किसी कार्यकी सिद्धिके लिये भगवान्‌के नामका प्रयोग कभी नहीं करना चाहिये।

जबतक भगवान्‌के नाममें 'रति' न पैदा हो जाय, तबतक 'रुचि' के साथ भगवान्‌का नाम लेना चाहिये, जबतक रुचि न पैदा हो तबतक भगवान्‌के नामका 'अभ्यास' करना चाहिये और अभ्यासकी दृढ़ता न होनेतक 'अमोघ औषध' के रूपमें भगवान्‌का नाम लेना चाहिये। भगवान्‌का नाम नित्य मधुर और दिव्य अमृतरूप है। उदाहरणके लिये मिश्री मीठी होनेपर भी पित्तके रोगीकी जीभ कड़वी होनेके कारण मिश्री कड़वी लगती है; परंतु मिश्री पित्त-नाशकी दवा है। मिश्रीके सेवनसे पित्तका शमन होनेपर जब जीभका कड़वापन मिट जाता है, तब मिश्री मीठी लगने लगती है; क्योंकि वह मीठी ही है। इसी प्रकार पूर्वसञ्चित कर्म-मलके कारण हमारी दूषित वृत्ति जबतक भगवान्‌के नामके माधुर्यका अनुभव नहीं करती, बल्कि उसे कड़वा समझती है, तबतक दवाके रूपमें जबरदस्ती उसे लेते रहना चाहिये। लेते-लेते कर्म-मलका शमन होते ही भगवान्‌की सहज नाम-माधुरीका स्वाद आने लगेगा।

परंतु यह स्मरण रखना चाहिये कि नामका आश्रय कलियुगमें सबसे बड़ा आश्रय है। इस एक ही आश्रयसे सर्वाङ्गीण पूर्ण सफलता प्राप्त हो सकती है। अतएव नित्य-निरन्तर नामका सेवन करना चाहिये और जहाँतक बने नामका सेवन 'नाम-प्रेमकी वृद्धि' के लिये ही करना चाहिये; किसी भी लौकिक-पारलौकिक इच्छाकी पूर्तिके लिये नहीं। नामका फल अचिन्त्य और अमूल्य है। उनकी वास्तविकतापर ध्यान न देकर उसमें भरे वास्तविक सत्यको ग्रहण करना चाहिये।

नामका जप मानसिक, उपांशु और वाचिक—तीनों तरहसे हो सकता है। नाम-जपमें जितनी सूक्ष्मता हो, उतना ही वह श्रेष्ठ है। पर नाम-कीर्तनमें जितना ही वाणीका स्पष्ट उच्चारण और उद्घोष हो, उतना ही श्रेष्ठ है। अपनी-अपनी स्थिति और रुचिके अनुसार जप-कीर्तन करना चाहिये।

भगवान्‌के सभी नाम समान महत्त्व रखते हैं, किसी भी नाममें

ऊँच-नीचका भाव न रखकर अपने लिये जो भी नाम विशेष प्रीतिकर और रुचिकर जान पड़े, उसीका जप-कीर्तन करना चाहिये।

सर्वेषां भगवन्नाम्नां समानो महिमापि चेत्।
तथापि स्वप्रियाणां तु स्वार्थसिद्धिः सुखं भवेत्॥
विभिन्नरुचिलोकानां क्रमात् सर्वेषु नामसु।
प्रियता सम्भवेत् तानि सर्वाणि स्युः प्रियाणि हि॥

'यद्यपि समस्त भगवन्नामोंकी महिमा समान ही है, तथापि जो नाम अपनेको प्रिय है, उनके कीर्तनसे अनायास ही अपने अभीष्ट मनोरथकी सिद्धि हो जाती है। विभिन्न रुचिवाले लोगोंका क्रमशः सभी नामोंमें प्रेम सम्भव हो जाता है। फिर वे सभी नाम उन्हें प्रिय हो जाते हैं।'

अतएव भगवान्‌के जिस नाम या जिन नामोंमें अपना मन लगता हो, उसीका जप करे; परंतु नाम-जप करनेवालोंके लिये यह परमावश्यक है कि वे प्रतिदिन नियमपूर्वक अधिक-से-अधिक संख्यामें नाम-जप अवश्य करें। इस नियमित जपके अतिरिक्त दिन-रात बिना संख्याके नाम-जप होता रहे, इसके लिये सावधानीके साथ प्रयत्नशील रहें। नियमित संख्याके नाम-जपका दृढ़ नियम होनेसे उतना जप तो प्रतिदिन पूरा हो ही जायगा; नहीं तो, नियम न रहनेपर किसी भी आवश्यक-अनावश्यक कार्यमें समय लग जायगा और जो सबसे पहले करने योग्य तथा सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कर्तव्य एवं जीवनमें अत्यावश्यक कार्य है, वह 'नाम-जप' छूट जायगा। मन धोखा देकर समझा देगा कि 'नियम थोड़े ही है, यह बहुत जरूरी काम है, इसे कर लेना चाहिये।' फिर व्यर्थकी बातचीत भी जरूरी काम हो जायगी। परंतु बड़ा नियम होनेपर उतना समय नाम-जपमें अवश्य लगेगा और नाम-जप होनेसे भगवान्‌के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध—कम-से-कम एक अङ्ग जीभका तो बना ही रहेगा। उतने समयतक वाणीका केवल संयम ही नहीं होगा, वाणीका यथार्थ सदुपयोग होगा; क्योंकि वाणीका सदुपयोग

भगवान्‌के नाम-गुण-गानमें ही है। उतने समयतक प्रमादवश होनेवाले मिथ्या भाषण, पर-निन्दासे रक्षा होगी—कम-से-कम व्यर्थ भाषणसे जीभकी रक्षा होगी। प्रमादयुक्त वाणीके कारण होनेवाले दुष्परिणामोंसे बचाव होगा और नाम-जपरूप सबसे महान् लाभ प्राप्त होगा। लगातार नियमित जप होनेसे वाणीका वैसा अभ्यास हो जायगा, जिससे वाणी सहज ही अपने-आप नाम-जप करती रहेगी और इससे फिर मन भी लग जायगा। तुलसीदासजी कहते हैं—

सकल अंग पद बिमुख नाथ! मुख नामकी ओट लई है।

'मेरे सारे अङ्ग आपके चरणोंसे विमुख हैं, केवल मुखने (जीभने) नामकी ओट ले रखी है।' स्वामी श्रीहरिदासजी नियमित तीन लाख नाम-जप प्रतिदिन करते थे, इससे उनको डिगानेके लिये आयी हुई वेश्या उनका तो कुछ बिगाड़ कर ही नहीं सकी, स्वयं उसीका उद्धार हो गया। स्वर्गीय पं॰ श्रीमोतीलालजी नेहरूके द्वारा पूर्वाभ्यासवश मृत्युके कुछ पहलेसे ही गायत्री-जप होने लगा था। इसी प्रकार पूर्वाभ्यासवश विश्वकवि श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुरके पिता श्रीद्विजेन्द्रनाथ ठाकुर बाह्य चेतनाशून्य अवस्थामें आसन लगाकर बैठ गये थे और गायत्री-जप करने लगे थे। नामका अभ्यास होनेपर अन्तकालमें भगवान्‌का नाम आ जाता है और अन्तकालकी स्थितिके अनुसार उसे सहज ही भगवत्प्राप्ति हो जाती है। अतएव प्रतिदिन नियमित संख्यामें नाम-जप अवश्य करना चाहिये। किया जाय तो आसानीसे एक लाख नाम-जप प्रतिदिन हो सकता है। मनुष्य दिनभर बोलता नहीं है, उसकी जीभ अधिकांश समय खाली रहती है। वह यदि चाहे और स्मरण रखे तो आसानीसे दिनभरमें चलते-फिरते एक लाख नाम-जप कर सकता है। नहीं तो २१६०० की संख्या पूरी कर ही लेनी चाहिये। दिनभरमें औसत इतने श्वास आते हैं, अतएव इतना जप होनेपर प्रतिश्वास एक नामका जप हो जायगा।

यहाँ भगवन्नाम-महिमाके कुछ श्लोक दिये जा रहे हैं—

कलियुगमें नामकी विशेषता

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः ।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत् ॥

(श्रीमद्भागवत)

'राजन्! दोषोंके भंडार कलियुगमें यही एक महान् गुण है कि इस समय श्रीकृष्णका कीर्तनमात्र करनेसे मनुष्यकी सारी आसक्तियाँ छूट जाती हैं और वह परमपदको प्राप्त हो जाता है।'

यदभ्यर्च्य हरिं भक्त्या कृते क्रतुशतैरपि ।
फलं प्राप्नोत्यविकलं कलौ गोविन्दकीर्तनात् ॥

(श्रीविष्णुरहस्य)

'सत्ययुगमें भक्ति-भावसे सैकड़ों यज्ञोंद्वारा भी श्रीहरिकी आराधना करके मनुष्य जिस फलको पाता है, वह सारा-का-सारा कलियुगमें भगवान् गोविन्दका कीर्तनमात्र करके प्राप्त कर लेता है।'

ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन् ।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम् ॥

(विष्णुपुराण)

'सत्ययुगमें भगवान्‌का ध्यान, त्रेतामें यज्ञोंद्वारा यजन और द्वापरमें उनका पूजन करके मनुष्य जिस फलको पाता है, उसे वह कलियुगमें केशवका कीर्तनमात्र करके प्राप्त कर लेता है।'

कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः ।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात् ॥

(श्रीमद्भागवत)

'सत्ययुगमें भगवान् विष्णुका ध्यान करनेवालेको, त्रेतामें यज्ञोंद्वारा यजन करनेवालेको तथा द्वापरमें श्रीहरिकी परिचर्यामें तत्पर रहनेवालेको जो फल मिलता है, वही कलियुगमें श्रीहरिका कीर्तनमात्र करनेसे प्राप्त हो जाता है।'

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

'श्रीहरिका नाम ही, नाम ही, नाम ही मेरा जीवन है। कलियुगमें इसके सिवा दूसरी कोई गति नहीं है, नहीं है, नहीं है।'

ते सभाग्या मनुष्येषु कृतार्था नृप निश्चितम्।
स्मरन्ति ये स्मारयन्ति हरेर्नाम कलौ युगे॥

'नरेश्वर! मनुष्योंमें वे ही सौभाग्यशाली तथा निश्चय ही कृतार्थ हैं, जो कलियुगमें हरिनामका स्वयं स्मरण करते हैं और दूसरोंको भी स्मरण कराते हैं।'

कलिकालकुसर्पस्य तीक्ष्णदंष्ट्रस्य मा भयम्।
गोविन्दनामदावेन दग्धो यास्यति भस्मताम्॥

(स्कन्दपुराण)

'तीखी दाढ़वाले कलिकालरूपी दुष्ट सर्पका भय अब दूर हो जाना चाहिये, क्योंकि गोविन्द-नामके दावानलसे दग्ध होकर वह शीघ्र ही राखका ढेर बन जायगा।'

हरिनामपरा ये च घोरे कलियुगे नराः।
त एव कृतकृत्याश्च न कलिर्बाधते हि तान्॥

'घोर कलियुगमें जो मनुष्य हरिनामकी शरण ले चुके हैं, वे ही कृतकृत्य हैं। कलि उन्हें बाधा नहीं देता।'

हरे केशव गोविन्द वासुदेव जगन्मय।
इतीरयन्ति ये नित्यं न हि तान् बाधते कलिः॥

(बृहन्नारदीय०)

'हरे! केशव! गोविन्द! वासुदेव! जगन्मय!—इस प्रकार जो नित्य उच्चारण करते हैं, उन्हें कलियुग कष्ट नहीं देता।'

येऽहर्निशं जगद्धातुर्वासुदेवस्य कीर्तनम्।
कुर्वन्ति तान् नरव्याघ्र न कलिर्बाधते नरान्॥

(विष्णुधर्मोत्तर)

'नरश्रेष्ठ ! जो लोग दिन-रात जगदाधार वासुदेवका कीर्तन करते हैं, उन्हें कलियुग नहीं सताता।'

ते धन्यास्ते कृतार्थाश्च तैरेव सुकृतं कृतम्।
तैराप्तं जन्मनः प्राप्यं ये कलौ कीर्तयन्ति माम्॥

(भगवान् कहते हैं—) 'जो कलियुगमें मेरा कीर्तन करते हैं, वे धन्य हैं, वे कृतार्थ हैं, उन्होंने ही पुण्य-कर्म किया है तथा उन्होंने ही जन्म और जीवनका पानेयोग्य फल पाया है।'

सकृदुच्चारयन्त्येतद् दुर्लभं चाकृतात्मनाम्।
कलौ युगे हरेर्नाम ते कृतार्था न संशयः॥

'जो कलियुगमें अपुण्यात्माओंके लिये दुर्लभ इस हरिनामका एक बार भी उच्चारण कर लेते हैं, वे कृतार्थ हैं—इसमें संशय नहीं है।'

नामसे सर्वपाप-नाश

पापानलस्य दीप्तस्य मा कुर्वन्तु भयं नराः।
गोविन्दनाममेघौघैर्नश्यते नीरबिन्दुभिः॥

(गारुडे)

'लोग प्रज्वलित पापाग्निसे भय न करें; क्योंकि वह गोविन्द-नामरूपी मेघसमूहोंके जल-बिन्दुओंसे नष्ट हो जाती है।'

अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्तिते सर्वपातकैः।
पुमान् विमुच्यते सद्यः सिंहत्रस्तैर्मृगैरिव॥

'विवश होकर भी भगवान्‌के नामका कीर्तन करनेपर मनुष्य समस्त पातकोंसे उसी प्रकार मुक्त हो जाता है, जैसे सिंहसे डरे हुए भेड़िये अपने शिकारको छोड़कर भाग जाते हैं।'

यन्नामकीर्तनं भक्त्या विलीयनमनुत्तमम्।
मैत्रेयाशेषपापानां धातूनामिव पावकः॥

'हे मैत्रेय ! भक्तिपूर्वक किया गया भगवन्नाम-कीर्तन उसी प्रकार

समस्त पापोंको विलीन कर देनेवाला सर्वोत्तम साधन है, जैसे धातुओंकी सारे मैलको जला डालनेके लिये आग।'

सायं प्रातस्तथा कृत्वा देवदेवस्य कीर्तनम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्गलोके महीयते॥

'मनुष्य सायं और प्रातःकाल देवाधिदेव श्रीहरिका कीर्तन करके सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो स्वर्गलोकमें सम्मानित होता है।'

नारायणो नाम नरो नराणां
प्रसिद्धचौरः कथितः पृथिव्याम्।
अनेकजन्मार्जितपापसञ्चयं
हरत्यशेषं श्रुतमात्र एव॥

(वामनपुराण)

'इस पृथ्वीपर नारायण नामक एक नर (व्यक्ति) प्रसिद्ध चोर बताया गया है, जिसका नाम एवं यश कर्ण-कुहरोंमें प्रवेश करते ही मनुष्योंकी अनेक जन्मोंकी कमाई हुई समस्त पापराशिको हर लेता है।'

गोविन्देति तथा प्रोक्तं भक्त्या वा भक्तिवर्जितैः।
दहते सर्वपापानि युगान्ताग्निरिवोत्थितः॥

(स्कन्दपुराण)

'मनुष्य भक्तिभावसे या भक्तिरहित होकर यदि गोविन्द-नामका उच्चारण कर ले तो वह नाम सम्पूर्ण पापोंको उसी प्रकार दग्ध कर देता है, जैसे युगान्तकालमें प्रज्वलित हुई प्रलयाग्नि सारे जगत्‌को जला डालती है।'

गोविन्दनाम्ना यः कश्चिन्नरो भवति भूतले।
कीर्तनादेव तस्यापि पापं याति सहस्रधा॥

'भूतलपर जो कोई भी मनुष्य गोविन्द-नामसे प्रसिद्ध होता है, उसके भी उस नामका कीर्तन करनेसे ही पापके सहस्रों टुकड़े हो जाते हैं।'

प्रमादादपि संस्पृष्टो यथानलकणो दहेत्।
तथौष्ठपुटसंस्पृष्टं हरिनाम दहेदघम्॥

'जैसे असावधानीसे भी छू ली गयी आगकी कणिका उस अङ्गको जला देती है, उसी प्रकार यदि हरिनामका ओष्ठपुटसे स्पर्श हो जाय तो वह पापको जलाकर भस्म कर देता है।'

अनिच्छयापि दहति स्पृष्टो हुतवहो यथा।
तथा दहति गोविन्दनाम व्याजादपीरितम्॥

(पद्मपुराण)

'जैसे अनिच्छासे भी स्पर्श कर लेनेपर आग शरीरको जला देती है, उसी प्रकार किसी बहानेसे भी लिया गया गोविन्द-नाम पापको दग्ध कर देता है।'

नराणां विषयान्धानां ममताकुलचेतसाम्।
एकमेव हरेर्नाम सर्वपापविनाशनम्॥

(बृहन्नारदीय०)

'ममतासे व्याकुल-चित्त हुए विषयान्ध मनुष्योंके समस्त पापोंका नाश करनेवाला एकमात्र हरिनाम ही है।'

कीर्तनादेव कृष्णस्य विष्णोरमिततेजसः।
दुरितानि विलीयन्ते तमांसीव दिनोदये॥

(पद्मपुराण)

'अमित तेजस्वी सर्वव्यापी भगवान् श्रीकृष्णके कीर्तनमात्रसे समस्त पाप उसी तरह विलीन हो जाते हैं, जैसे दिन निकल आनेपर अन्धकार।'

साङ्केत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः॥

(श्रीमद्भागवत)

'संकेत, परिहास, स्तोभ* या अनादरपूर्वक भी किया हुआ भगवान्

---

* पुत्र आदिका गोविन्द, केशव या नारायण आदि संकेत (नाम) रखकर उसका उच्चारण करना 'साङ्केत्य' है। उपहास करते हुए नाम लेना 'पारिहास्य' कहलाता है—जैसे कोई कहे, 'राम-नाम' कहनेसे क्या होगा? इत्यादि। गीत आदिके स्वरको पूरा करनेके लिये किसी

विष्णुके नामोंका कीर्तन सम्पूर्ण पापोंका नाशक है—ऐसा महात्मालोग जानते हैं।'

अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत्।
संकीर्तितमघं पुंसो दहेदेधो यथानलः॥

'जैसे अग्नि लकड़ीको जला देती है, उसी प्रकार जाने-अनजाने लिया गया भगवान् पुण्यश्लोकका नाम पुरुषकी पापराशिको भस्म कर देता है।'

नाम्नोऽस्य यावती शक्तिः पापनिर्हरणे हरेः।
तावत्कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः॥

(बृहद्विष्णुपुराण)

'श्रीहरिके इस नाममें पापनाश करनेकी जितनी शक्ति है, उतना पातक पातकी मनुष्य अपने जीवनमें कर ही नहीं सकता।'

श्वादोऽपि नहि शक्नोति कर्तुं पापानि मानतः।
तावन्ति यावती शक्तिर्विष्णुनाम्नोऽशुभक्षये॥

'भगवान् विष्णुके नाममें पापक्षय करनेकी जितनी शक्ति विद्यमान है, माप-तौलमें उतने पाप कुक्कुरभोजी चाण्डाल भी नहीं कर सकता।'

नामसे रोग-उत्पात-भूत-व्याधि आदिका नाश

अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात्।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥

'अच्युत, अनन्त, गोविन्द—इन नामोंके उच्चारणरूपी औषधसे समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं, यह मैं सत्य-सत्य कहता हूँ।'

न साम्ब व्याधिजं दुःखं हेयं नान्यौषधैरपि।
हरिनामौषधं पीत्वा व्याधिस्त्याज्यो न संशयः॥

शब्दका (जिसका वहाँ कुछ अर्थ न हो) उच्चारण स्तोभ है, जैसे सामवेदमें 'इडा', 'होई' इत्यादि शब्द। ऐसे ही अवसरपर भगवान्‌का नाम लेना 'स्तोभ' है। अथवा शीत आदिसे पीड़ित होनेपर बैठे-बैठे मुँहसे 'राम-राम' निकल गया— इस तरहका उच्चारण 'स्तोभ' है।

'हे साम्ब ! व्याधिजनित दुःख स्वतः छूटनेयोग्य नहीं है, इसे दूसरी ओषधियोंद्वारा भी सहसा नहीं दूर किया जा सकता, परंतु हरिनामरूपी औषधका पान करनेसे समस्त व्याधियोंका निवारण हो जाता है, इसमें संशय नहीं है।'

आधयो व्याधयो यस्य स्मरणान्नामकीर्तनात्।
तदैव विलयं यान्ति तमनन्तं नमाम्यहम्॥

'जिनके स्मरण और नामकीर्तनसे सम्पूर्ण आधियाँ (मानसिक चिन्ताएँ) और व्याधियाँ तत्काल नष्ट हो जाती हैं, उन भगवान् अनन्तको मैं नमस्कार करता हूँ।'

मायाव्याधिसमाच्छन्नो राजव्याध्युपपीडितः।
नारायणेति संकीर्त्य निरातङ्को भवेन्नरः॥

'जो मायामय व्याधिसे आच्छादित तथा राजरोगसे पीड़ित है, वह मनुष्य नारायण—इस नामका संकीर्तन करके निर्भय हो जाता है।'

सर्वरोगोपशमनं सर्वोपद्रवनाशनम्।
शान्तिदं सर्वरिष्टानां हरेर्नामानुकीर्तनम्॥

'श्रीहरिके नामका बारम्बार कीर्तन समस्त रोगोंको शान्त करनेवाला, सारे उपद्रवोंका नाशक और सम्पूर्ण अरिष्टोंकी शान्ति करनेवाला है।'

संकीर्त्यमानो भगवाननन्तः
श्रुतानुभावो व्यसनं हि पुंसाम्।
प्रविश्य चित्तं विधुनोत्यशेषं
यथा तमोऽर्कोऽभ्रमिवातिवातः॥

'जिनकी महिमा सर्वत्र विश्रुत (प्रसिद्ध) है, उन भगवान् अनन्तका जब कीर्तन किया जाता है, तब वे उन कीर्तनपरायण भक्तजनोंके चित्तमें प्रविष्ट हो उनके सारे संकटको उसी प्रकार नष्ट कर देते हैं, जैसे सूर्य अन्धकारको और आँधी बादलोंको।'

आर्ता विषण्णाः शिथिलाश्च भीता
घोरेषु च व्याधिषु वर्तमानाः।
संकीर्त्य नारायणशब्दमेकं
विमुक्तदुःखाः सुखिनो भवन्ति॥

'पीड़ित, विषादग्रस्त, शिथिल, भयभीत तथा भयानक रोगोंमें पड़े हुए मनुष्य भी एकमात्र नारायण-नामका कीर्तन करके समस्त दुःखोंसे छूटकर सुखी हो जाते हैं।'

कीर्तनादेव देवस्य विष्णोरमिततेजसः।
यक्षराक्षसवेतालभूतप्रेतविनायकाः॥
डाकिन्यो विद्रवन्ति स्म ये तथान्ये च हिंसकाः।
सर्वानर्थहरं तस्य नामसंकीर्तनं स्मृतम्॥
नामसंकीर्तनं कृत्वा क्षुत्तृट्प्रस्खलितादिषु।
वियोगं शीघ्रमाप्नोति सर्वानर्थैर्न संशयः॥

'अमित तेजस्वी भगवान् विष्णुके कीर्तनसे ही यक्ष, राक्षस, भूत, वेताल, प्रेत, विनायक (विघ्न), डाकिनी-गण तथा अन्य भी जो हिंसक भूतगण हैं, वे सब भाग जाते हैं। भगवान्का नाम-संकीर्तन सम्पूर्ण अनर्थोंका नाशक कहा गया है। भूख-प्यासमें तथा गिरने, लड़खड़ाने आदिके समय भगवन्नाम-संकीर्तन करके मनुष्य सारे अनर्थोंसे छुटकारा पा जाता है—इसमें संशय नहीं है।'

मोहानलोल्लसज्ज्वालाज्वलल्लोकेषु सर्वदा।
यन्नामाम्भोधरच्छायां प्रविष्टो नैव दह्यते॥

'मोहाग्निकी धधकती हुई ज्वालाओंसे सदा जलते हुए लोकोंमें जो भगवन्नामरूपी जलधरकी छायामें प्रविष्ट होता है, वह कभी नहीं दग्ध होता।'

नामसे प्रारब्धकर्म-नाश

नातः परं कर्मनिबन्धकृन्तनं
मुमुक्षतां तीर्थपदानुकीर्तनात्।

न यत् पुनः कर्मसु सज्जते मनो
रजस्तमोभ्यां कलिलं ततोऽन्यथा ॥

(श्रीमद्भागवत)

'जो लोग इस संसार-बन्धनसे मुक्त होना चाहते हैं, उनके लिये तीर्थपाद भगवान्‌के नामसे बढ़कर और कोई साधन ऐसा नहीं है, जो कर्मबन्धनकी जड़ काट सके, क्योंकि नामका आश्रय लेनेसे मनुष्यका मन फिर सकाम कर्मोंमें आसक्त नहीं होता। भगवन्नामके अतिरिक्त दूसरे किसी प्रायश्चित्तका आश्रय लेनेपर मन रजोगुण और तमोगुणसे ग्रस्त ही रहता है तथा उसके पापोंका भी पूर्णतः नाश नहीं हो पाता।'

यन्नामधेयं म्रियमाण आतुरः
पतन् स्मरन् वा विवशो गृणन् पुमान्।
विमुक्तकर्मार्गल उत्तमां गतिं
प्राप्नोति यक्ष्यन्ति न तं कलौ जनाः ॥

(श्रीमद्भागवत)

'मरणोन्मुख रोगी तथा गिरता या किसीका स्मरण करता हुआ मनुष्य विवश होकर भी जिन भगवान्‌के नामका उच्चारण करके कर्मोंकी साँकलसे छुटकारा पा उत्तम गतिको प्राप्त कर लेता है, उन्हीं भगवान्‌का कलियुगके मनुष्य पूजन नहीं करेंगे (यह कितने कष्टकी बात है)।'

नामसे मुक्ति और परमधामकी प्राप्ति

इष्टापूर्तानि कर्माणि सुबहूनि कृतान्यपि।
भवे हेतूनि तान्येव हरेर्नाम तु मुक्तिदम् ॥

(बोधायनसंहिता)

'इष्ट (यज्ञ-योगादि) और आपूर्त (कूप-वाटिका-निर्माण आदि) कर्म कितनी ही अधिक संख्यामें क्यों न किये जायँ, वे ही भव-बन्धनके कारण बनते हैं। परंतु श्रीहरिका नाम लिया जाय तो वह भव-बन्धनसे छुटकारा दिलानेवाला होता है।'

किं करिष्यसि सांख्येन किं योगैर्नरनायक।
मुक्तिमिच्छसि राजेन्द्र कुरु गोविन्दकीर्तनम्॥

(गरुडपुराण)

'नरेन्द्र! सांख्य और योगका अनुष्ठान करके क्या करोगे? राजेन्द्र! यदि मुक्ति चाहते हो तो गोविन्दका कीर्तन करो।'

सकृदुच्चारितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम्।
बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति॥

(स्कन्दपुराण)

'जिसने एक बार भी 'हरि' इन दो अक्षरोंका उच्चारण कर लिया, उसने मोक्षतक पहुँचनेके लिये कमर कस ली।'

अप्यन्यचित्तोऽशुद्धो वा यः सदा कीर्तयेद्धरिम्।
सोऽपि दोषक्षयान्मुक्तिं लभेच्चेदिपतिर्यथा॥

(ब्रह्मपुराण)

'जो अन्यमनस्क तथा अशुद्ध रहकर भी सदा हरिनामका कीर्तन करता है, वह भी अपने दोषोंका नाश हो जानेके कारण उसी तरह मोक्ष प्राप्त कर लेता है, जैसे चेदिराज शिशुपालने प्राप्त किया था।'

सकृदुच्चारयेद् यस्तु नारायणमतन्द्रितः।
शुद्धान्तःकरणो भूत्वा निर्वाणमधिगच्छति॥

(पद्मपुराण)

'जो आलस्य छोड़कर एक बार नारायण-नामका उच्चारण कर लेता है, उसका अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है और वह निर्वाण पदको प्राप्त होता है।'

यथा कथञ्चिद् यन्नाम्नि कीर्तिते वा श्रुतेऽपि वा।
पापिनोऽपि विशुद्धाः स्युः शुद्धा मोक्षमवाप्नुयुः॥

(बृहन्नारदीय०)

'भगवान्‌के नामका जिस किसी तरह भी उच्चारण या श्रवण कर लेनेपर पापी भी विशुद्ध हो जाते हैं और शुद्ध पुरुष मोक्षको प्राप्त कर लेते हैं।'

नव्यं नव्यं नामधेयं पुरारे-
यद्यच्चैतद् गेयपीयूषपुष्टम्।
ये गायन्ति त्यक्तलज्जाः सहर्षं
जीवन्मुक्ताः संशयो नास्ति तत्र॥

(नारदपुराण)

'पुरारि (या मुरारि)-का जो नया-नया नाम है और जो इनके गुणगान-रूपी अमृतसे पुष्ट हुआ है, उसका जो लोग लज्जा छोड़कर हर्षोल्लासके साथ गान करते हैं, वे जीवन्मुक्त हैं— इसमें संशय नहीं है।'

आपन्नः संसृतिं घोरां यन्नाम विवशो गृणन्।
ततः सद्यो विमुच्येत यद्बिभेति स्वयं भयम्॥

(श्रीमद्भागवत)

'घोर संसार-बन्धनमें पड़ा हुआ मनुष्य विवश होकर भी यदि भगवन्नामका उच्चारण करता है तो वह तत्काल उस बन्धनसे मुक्त हो जाता है और उस पदको प्राप्त होता है, जिससे भय स्वयं भय मानता है।'

एतावतालमघनिर्हरणाय पुंसां
संकीर्तनं भगवतो गुणकर्मनाम्नाम्।
विक्रुश्य पुत्रमघवान् यदजामिलोऽपि
नारायणेति म्रियमाण इयाय मुक्तिम्॥

(श्रीमद्भागवत)

'मनुष्योंके पापका नाश करनेके लिये इतने बड़े साधनकी आवश्यकता नहीं कि भगवान्‌के गुण, कर्म और नामोंका कीर्तन किया जाय, क्योंकि अजामिल-जैसा पापी भी मरते समय 'नारायण' शब्दसे अपने पुत्रको पुकारकर मुक्ति पा गया।'

यन्नामस्मरणादेव पापिनामपि सत्वरम्।
मुक्तिर्भवति जन्तूनां ब्रह्मादीनां सुदुर्लभा॥

(पद्मपुराण, उत्तरखण्ड)

'उन भगवान्‌के नामका स्मरण करते ही पापी जीवोंको भी तत्काल ऐसी मुक्ति सुलभ हो जाती है, जो ब्रह्मा आदि देवताओंके लिये भी परम दुर्लभ है।'

जिह्वाग्रे वर्तते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम्।
विष्णुलोकमवाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥

(बृहन्नारदीय०)

'जिसकी जिह्वाके अग्रभागपर 'हरि' ये दो अक्षर विद्यमान हैं, वह पुनरावृत्तिरहित विष्णुलोकको प्राप्त कर लेता है।'

तदेव पुण्यं परमं पवित्रं गोविन्दगेहे गमनाय पत्रम्।
तदेव लोके सुकृतैकसत्रं यदुच्यते केशवनाममात्रम्॥

(पद्मपुराण)

'भगवान् केशवके नाममात्रका जो उच्चारण किया जाता है, वही परम पवित्र पुण्यकर्म है। वही गोविन्दगेह (गोलोकधाम)-में जानेके लिये वाहन है और वही इस लोकमें सुकृतका एकमात्र सत्र है।'

एवं संग्रहणीपुत्राभिधानव्याजतो हरिम्।
समुच्चार्यान्तकालेऽगाद् धाम तत्परमं हरेः॥

(ब्रह्मवैवर्त०)

'इस प्रकार अन्तकालमें अपने अधर्मज पुत्रके नामके बहाने हरिका उच्चारण करके वह श्रीहरिके परमधाममें जा पहुँचा।'

नारायणमिति व्याजादुच्चार्य कलुषाश्रयः।
अजामिलोऽप्यगाद् धाम किमुत श्रद्धया गृणन्॥

(ब्रह्मवैवर्त०)

'पुत्रके बहाने नारायण—इस नामका उच्चारण करके पापका भण्डार अजामिल भी भगवद्धाममें चला गया। फिर जो श्रद्धापूर्वक भगवान्‌का नाम लेता है, उसकी मुक्तिके लिये तो कहना ही क्या है।'

ये कीर्तयन्ति वरदं वरपद्मनाभं
शङ्खाब्जचक्रशरचापगदासिहस्तम्।

पद्मालयावदनपङ्कजषट्पदाक्षं
नूनं प्रयान्ति सदनं मधुघातिनस्ते ॥

(वामनपुराण)

'जो लोग शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, बाण-धनुष और खड्ग धारण करनेवाले, लक्ष्मीके मुखारविन्दका मकरन्द पीनेके लिये भ्रमररूप नेत्रवाले वरदायक एवं श्रेष्ठ भगवान् पद्मनाभका कीर्तन करते हैं, वे अवश्य उन मधुसूदनके धाममें जाते हैं।'

वासुदेवेति मनुज उच्चार्य भवभीतितः ।
तन्मुक्तः पदमाप्नोति विष्णोरेव न संशयः ॥

(अङ्गिरसपुराण)

'जो मनुष्य संसारभयसे भीत हो 'वासुदेव' इस नामका उच्चारण करता है, वह उस भयसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके ही पदको प्राप्त होता है—इसमें संशय नहीं है।'

नामसे सब त्रुटियोंकी पूर्णता

मन्त्रतस्तन्त्रतश्छिद्रं देशकालार्हवस्तुतः ।
सर्वं करोति निश्छिद्रं नामसंकीर्तनं तव ॥

(श्रीमद्भागवत)

'मन्त्र, तन्त्र (विधि), देश, काल, पात्र और द्रव्य आदिकी दृष्टिसे भी छिद्र (न्यूनता)-को प्राप्त हुए कर्मोंको आप (भगवान्)-का कीर्तन त्रुटिरहित (परिपूर्ण) कर देता है।'

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु ।
न्यूनं सम्पूर्णतामेति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥

(स्कन्दपुराण)

'जिनके स्मरण तथा नामोच्चारणसे तप तथा यज्ञादि कर्मोंमें तत्काल न्यूनताकी पूर्ति हो जाती है, उन भगवान् अच्युतको मैं नमस्कार करता हूँ।'

नामसे भगवान्‌का वशमें होना

ऋणमेतत् प्रवृद्धं मे हृदयान्नापसर्पति।
यद् गोविन्देति चुक्रोश कृष्णा मां दूरवासिनम्॥

(महाभारत)

'द्रुपदकुमारी कृष्णाने कौरवसभामें वस्त्र खींचे जाते समय जो मुझ दूरवासी (द्वारकानिवासी) श्रीकृष्णको 'गोविन्द' कहकर पुकारा था, उसका यह ऋण मुझपर बहुत बढ़ गया है। यह हृदयसे कभी दूर नहीं होता।'

गीत्वा च मम नामानि नर्तयेन्मम संनिधौ।
इदं ब्रवीमि ते सत्यं क्रीतोऽहं तेन चार्जुन॥

'अर्जुन! जो मेरे नामोंका गान करके मेरे निकट नाचने लगता है, उसने मुझे खरीद लिया है—यह मैं तुमसे सच्ची बात कहता हूँ।'

गीत्वा च मम नामानि रुदन्ति मम संनिधौ।
तेषामहं परिक्रीतो नान्यक्रीतो जनार्दनः॥

(आदिपुराण)

'जो मेरे नामोंका गान करके मेरे समीप प्रेमसे रो उठते हैं, उनका मैं खरीदा हुआ गुलाम हूँ, यह जनार्दन दूसरे किसीके हाथ नहीं बिका है।'

जितं तेन जितं तेन जितं तेनेति निश्चितम्।
जिह्वाग्रे वर्तते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम्॥

'जिसकी जिह्वाके अग्रभागपर 'हरि'— ये दो अक्षर विद्यमान हैं, उसकी जीत हो गयी, उसने विजय पा ली, निश्चय ही उसकी विजय हो गयी।'

भगवन्नाममें देश-काल-अवस्थाकी कोई बाधा नहीं

न देशनियमस्तस्मिन् न कालनियमस्तथा।
नोच्छिष्टेऽपि निषेधोऽस्ति श्रीहरेर्नाम्नि लुब्धक॥

'व्याध ! श्रीहरिके नाम-कीर्तनमें न तो किसी देश-विशेषका नियम है और न काल-विशेषका ही। जूठे अथवा अपवित्र होनेपर भी नामोच्चारणके लिये कोई निषेध नहीं है।'

चक्रायुधस्य नामानि सदा सर्वत्र कीर्तयेत्।
नाशौचं कीर्तने तस्य स पवित्रकरो यतः॥

'चक्रपाणि श्रीहरिके नामोंका सदा और सर्वत्र कीर्तन करें। उनके कीर्तनमें अशौच बाधक नहीं है, क्योंकि वे भगवान् स्वयं ही सबको पवित्र करनेवाले हैं।'

न देशकालावस्थासु शुद्ध्यादिकमपेक्षते।
किंतु स्वतन्त्रमेवैतन्नाम कामितकामदम्॥

'यह भगवन्नाम किसी भी देश, काल और अवस्थामें शुद्धि आदिकी अपेक्षा नहीं रखता, यह तो स्वतन्त्र ही रहकर अभीष्ट कामनाओंको देनेवाला है।'

न देशकालनियमो न शौचाशौचनिर्णयः।
परं संकीर्तनादेव राम रामेति मुच्यते॥

'कीर्तनमें देश-कालका नियम नहीं है, शौचाशौचका निर्णय भी आवश्यक नहीं है। केवल 'राम-राम' ऐसा कीर्तन करनेसे ही परम मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है।'

न देशनियमो राजन् न कालनियमस्तथा।
विद्यते नात्र संदेहो विष्णोर्नामानुकीर्तने॥

'राजन्! भगवान् विष्णुके इस नाम-कीर्तनमें देश और कालका नियम नहीं है— इस विषयमें तुम्हें संदेह नहीं करना चाहिये।'

कालोऽस्ति दाने यज्ञे च स्नाने कालोऽस्ति मज्जने।
विष्णुसंकीर्तने कालो नास्त्यत्र पृथिवीतले॥

'दान और यज्ञके लिये कालका नियम है, स्नान और मज्जन (नदी, सरोवर आदिमें गोता लगाने)-के लिये भी समयका नियम है, परंतु इस

भूतलपर भगवान् विष्णुका कीर्तन करनेके लिये कोई काल निश्चित नहीं है। उसे हर समय किया जा सकता है।'

श्रीरामनामकी महिमा

रामेति द्व्यक्षरजपः सर्वपापापनोदकः।
गच्छंस्तिष्ठञ्शयानो वा मनुजो रामकीर्तनात्॥
इह निर्वर्तितो याति चान्ते हरिगणो भवेत्।
रामेति द्व्यक्षरो मन्त्रो मन्त्रकोटिशताधिकः॥
न रामादधिकं किञ्चित् पठनं जगतीतले।
रामनामाश्रया ये वै न तेषां यमयातना॥
रमते सर्वभूतेषु स्थावरेषु चरेषु च।
अन्तरात्मस्वरूपेण यच्च रामेति कथ्यते॥
रामेति मन्त्रराजोऽयं भवव्याधिनिषूदकः।
रामचन्द्रेति रामेति रामेति समुदाहृतः॥
द्व्यक्षरो मन्त्रराजोऽयं सर्वकार्यकरो भुवि।
देवा अपि प्रगायन्ति रामनाम गुणाकरम्॥
तस्मात् त्वमपि देवेशि रामनाम सदा वद।
रामनाम जपेद् यो वै मुच्यते सर्वकिल्बिषैः॥

(स्कन्दपुराण, नागरखण्ड)

भगवान् श्रीशङ्करजी देवी पार्वतीसे कहते हैं—

''राम' यह दो अक्षरोंका मन्त्र जपनेपर समस्त पापोंका नाश करता है। चलते, खड़े हुए अथवा सोते (जिस किसी भी समय) जो मनुष्य रामनामका कीर्तन करता है, वह यहाँ कृतकार्य होकर जाता है और अन्तमें भगवान् हरिका पार्षद बनता है 'राम' यह दो अक्षरोंका मन्त्र शतकोटि मन्त्रोंसे भी अधिक महत्त्व रखता है। रामनामसे बढ़कर जगत्में जप करनेयोग्य कुछ भी नहीं है। जिन्होंने रामनामका आश्रय लिया है, उनको

****

यमयातना नहीं भोगनी पड़ती। जो मनुष्य अन्तरात्मस्वरूपसे रामनामका उच्चारण करता है, वह स्थावर-जङ्गम सभी भूतप्राणियोंमें रमण करता है। 'राम' यह मन्त्रराज है, यह भय तथा व्याधिका विनाश करनेवाला है। 'रामचन्द्र', 'राम', 'राम'—इस प्रकार उच्चारण करनेपर यह दो अक्षरोंका मन्त्रराज पृथ्वीमें समस्त कार्योंको सफल करता है। गुणोंकी खान इस रामनामका देवतालोग भी भलीभाँति गान करते हैं। अतएव हे देवेश्वरि ! तुम भी सदा रामनामका उच्चारण किया करो। जो रामनामका जप करता है, वह सारे पापोंसे (पूर्वकृत एवं वर्तमानकृत सूक्ष्म और स्थूल पापोंसे और समस्त पापवासनाओंसे सदाके लिये) छूट जाता है।'

विष्णोरेकैकनामापि सर्ववेदाधिकं मतम्।
तादृङ्नामसहस्रेण रामनाम समं स्मृतम्॥

(पद्मपुराण)

'भगवान् विष्णुका एक-एक नाम भी सम्पूर्ण वेदोंसे अधिक माहात्म्यशाली माना गया है। ऐसे एक सहस्र नामोंके तुल्य राम-नाम कहा गया है।'

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे।
सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने॥

(पद्मपुराण)

'भगवान् शङ्कर कहते हैं—'मेरे मनमें रमनेवाली सुमुखि शिवे ! मैं 'राम, राम, राम' इस प्रकार कीर्तन करता हुआ राममें ही रमता हूँ। दूसरे सहस्र नामोंके समान एक रामनामकी महिमा है।'

श्रीकृष्णनामकी महिमा

अलमलमियमेव प्राणिनां पातकानां
निरसनविषये या कृष्ण कृष्णेति वाणी।
यदि भवति मुकुन्दे भक्तिरानन्दसान्द्रा
विलुठति चरणाब्जे मोक्षसाम्राज्यलक्ष्मीः॥

(सर्वज्ञमुनि)

''कृष्ण, कृष्ण' इस प्रकार उच्चारण करनेवाली जो वाणी है, यही प्राणियोंके पातकोंको दूर करनेमें पूर्णतः समर्थ है। यदि मुकुन्दमें आनन्दघनस्वरूपा भक्ति हो जाती है तो मोक्ष-साम्राज्यकी लक्ष्मी उस भक्तके चरणकमलमें स्वयं आकर लोटने लगती है।'

कः परेतनगरीपुरन्दरः को भवेदथ तदीयकिंकरः।
कृष्णनाम जगदेकमङ्गलं कण्ठपीठमुरीकरोति चेत्॥

'यदि जगत्‌का एकमात्र मङ्गल करनेवाला श्रीकृष्ण-नाम कण्ठके सिंहासनको स्वीकार कर लेता है तो यमपुरीका स्वामी उस कृष्णभक्तके सामने क्या है? अथवा यमराजके दूतोंकी क्या हस्ती है?'

ब्रह्माण्डानां कोटिसंख्याधिकाना-
मैश्वर्यं यच्चेतना वा यदंशः।
आविर्भूतं तन्महः कृष्णनाम
तन्मे साध्यं साधनं जीवनं च॥

'करोड़ोंकी संख्यासे भी अधिक ब्रह्माण्डोंका जो ऐश्वर्य अथवा जो चेतना है, वह जिसका अंशमात्र है,वही तेजःपुञ्ज 'कृष्ण' नामके रूपमें प्रकट हुआ है। वह 'कृष्ण' नाम ही मेरा साध्य, साधन और जीवन है।'

स्वर्गार्थीया व्यवसितिरसौ दीनयत्येव लोकान्
मोक्षापेक्षा जनयति जनं केवलं क्लेशभाजम्।
योगाभ्यासः परमविरसस्तादृशैः किं प्रयासैः
सर्वं त्यक्त्वा मम तु रसना कृष्ण कृष्णेति रौतु॥

'स्वर्गकी प्राप्तिके लिये जो व्यवसाय (निश्चय अथवा उद्योग) है, वह लोगोंको दीन ही बनाता है। मोक्षकी जो अभिलाषा है, वह मनुष्यको केवल क्लेशका भागी बनाती है और योगाभ्यास तो अत्यन्त नीरस वस्तु है। अतः वैसे प्रयासोंसे मेरा क्या प्रयोजन है। मेरी जिह्वा तो सब कुछ छोड़कर केवल 'कृष्ण, कृष्ण' की रट लगाती रहे।'

आकृष्टिः कृतचेतसां सुमहतामुच्चाटनं चांहसा-
माचाण्डालममूकलोकसुलभो वश्यश्च मोक्षश्रियः।
नो दीक्षां न च दक्षिणां न च पुरश्चर्यां मनागीक्षते
मन्त्रोऽयं रसनास्पृगेव फलति श्रीकृष्णनामात्मकः॥

'यह कृष्णनामरूपी मन्त्र शुद्धचेता महात्माओंके चित्तको (हठात्) अपनी ओर आकृष्ट करनेवाला तथा बड़े-से-बड़े पापोंका मूलोच्छेद करनेवाला है। मोक्षरूपिणी लक्ष्मीके लिये तो यह वशीकरण ही है। इतना ही नहीं, यह केवल गूँगोंको छोड़कर चाण्डालसे लेकर उत्तम जातितकके सभी मनुष्योंके लिये सुलभ है। दीक्षा, दक्षिणा और पुरश्चरणका यह तनिक भी विचार नहीं करता। यह मन्त्र जिह्वाका स्पर्श करते ही सभीके लिये पूर्ण फलद होता है।'

कृष्णस्य नानाविधकीर्तनेषु
तन्नामसंकीर्तनमेव मुख्यम्।
तत्प्रेमसम्पज्जनने स्वयं द्राक्-
शक्तं ततः श्रेष्ठतमं मतं तत्॥

'श्रीकृष्णके नाना प्रकारके कीर्तनोंमें उनका नामकीर्तन ही मुख्य है। वह श्रीकृष्ण-प्रेमरूपा सम्पत्तिको शीघ्र उत्पन्न करनेमें स्वयं समर्थ है। इसलिये वह सब साधनोंसे श्रेष्ठतम माना गया है।'

नामसंकीर्तनं प्रोक्तं कृष्णस्य प्रेमसम्पदि।
बलिष्ठं साधनं श्रेष्ठं परमाकर्षमन्त्रवत्॥

'श्रीकृष्णका नामकीर्तन प्रेमसम्पत्तिकी प्राप्तिके लिये प्रबल एवं श्रेष्ठ साधन कहा गया है। वह श्रेष्ठ आकर्षण-मन्त्रकी भाँति चित्तको अत्यन्त आकृष्ट करनेवाला है।'

तदेव मन्यते भक्तेः फलं तद्रसिकैर्जनैः।
भगवत्प्रेमसम्पत्तौ सदैवाव्यभिचारतः॥

'अतः नामरसिक भक्तजन उन कृष्णनामको ही भक्तिका फल मानते हैं; क्योंकि भगवत्प्रेमकी प्राप्तिमें वह कभी व्यभिचरित (असफल) नहीं हुआ।'

सल्लक्षणं प्रेमभरस्य कृष्णो
कैश्चिद् रसज्ञैरुत कथ्यते तत्।
प्रेम्णो भरेणैव निजेष्टनाम-
संकीर्तनं हि स्फुरति स्फुटं तत्॥

'कितने ही रसज्ञजन उस कृष्णनामको ही कृष्ण-विषयक अत्यन्त प्रेमका उत्तम लक्षण बताते हैं; क्योंकि अधिक प्रेमसे ही अपने इष्टदेवके नामका संकीर्तन स्पष्टरूपसे स्फुरित होता है।'

कृष्णः शरच्चन्द्रमसं कौमुदी कुमुदाकरम्।
जगौ गोपीजनस्त्वेकं कृष्णनाम पुनः पुनः॥

(विष्णुपुराण ५। १३। ५२)

'रासके समय श्रीकृष्णचन्द्र शरत्कालीन चन्द्रमा, उसकी चाँदनी और कुमुदसमूहका गुणगान करने लगे। परंतु गोपियोंने तो बारम्बार केवल एक श्रीकृष्णनामका ही गान किया।'

रासगेयं जगौ कृष्णो यावत्तारतरध्वनिः।
साधु कृष्णेति कृष्णेति तावता द्विगुणं जगुः॥

(विष्णुपुराण ५। १३। ५६)

'श्रीकृष्णचन्द्र जितने उच्चस्वरसे रासोचित गान गाते थे, उससे दूने स्वरमें गोपियाँ केवल 'साधु कृष्ण! धन्य कृष्ण!' के गीत गाती थीं।'

सकृदपि परिगीतं श्रद्धया हेलया वा
भृगुवर नरमात्रं तारयेत् कृष्णनाम।

'श्रद्धासे, अवहेलनासे—कैसे भी एक बार भी किया हुआ कृष्ण-नामका कीर्तन मनुष्यमात्रको तार देता है।'

श्रीकृष्णनामामृतमात्महृद्यं
प्रेम्णा समास्वादनभङ्गिपूर्वम्।

यत् सेव्यते जिह्विकयाविरामं
तस्यातुलं जल्पतु को महत्त्वम् ॥

'(फिर) अपने मनको अत्यन्त प्रिय लगनेवाले श्रीकृष्णनामामृतका प्रेमसे रसास्वादनकी चेष्टाके साथ जो जिह्वाद्वारा अविराम सेवन किया जाता है, उसकी अनुपम महत्ताका कौन वर्णन कर सकता है।'

सर्वमङ्गलमङ्गल्यमायुष्यं व्याधिनाशनम् ।
भुक्तिमुक्तिप्रदं दिव्यं वासुदेवस्य कीर्तनम् ॥

'वासुदेव' नामका दिव्य कीर्तन सम्पूर्ण मङ्गलोंमें भी परम मङ्गलकारी, आयुकी वृद्धि करनेवाला, रोगनाशक तथा भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है।

परिहासोपहास्याद्यैर्विष्णोर्गृह्णन्ति नाम ये ।
कृतार्थास्तेऽपि मनुजास्तेभ्योऽपीह नमो नमः ॥

'जो परिहास और उपहास आदिके द्वारा भगवान् विष्णुके नाम लेते हैं, वे मनुष्य भी कृतार्थ हैं। उनके प्रति भी यहाँ मेरी ओरसे बारम्बार नमस्कार है।'

सर्वत्र सर्वकालेषु येऽपि कुर्वन्ति पातकम् ।
नामसंकीर्तनं कृत्वा यान्ति विष्णोः परं पदम् ॥

'जो सर्वत्र और सर्वदा पापाचरण करते हैं, वे भी हरिनामसंकीर्तन करके विष्णुके परमधाममें चले जाते हैं।'

नारायणाच्युतानन्त वासुदेवेति यो नरः ।
सततं कीर्तयेद् भूमिं यान्ति मल्लयतां स हि ॥

'जो मनुष्य नारायण, अच्युत, अनन्त और वासुदेव आदि नामोंका सदा कीर्तन करता है, वह मुझमें लीन होनेवाले भक्तोंकी भूमिको प्राप्त होता है।'

प्राणप्रयाणपाथेयं संसारव्याधिभेषजम् ।
दुःखशोकपरित्राणं हरिरित्यक्षरद्वयम् ॥

'हरि' यह दो अक्षरोंका नाम प्राण-प्रयाणके पथका पाथेय है, संसाररूपी रोगकी ओषधि है तथा दुःख और शोकसे सबकी सदा रक्षा करनेवाला है।'

विचेयानि विचार्याणि विचिन्त्यानि पुनः पुनः।
कृपणस्य धनानीव त्वन्नामानि भवन्तु नः॥

'हे भगवन्! जैसे कृपण मनुष्य बारम्बार धनका संचय, विचार एवं चिन्तन करता है, उसी तरह हमारे लिये आपके नाम ही पुनः-पुनः संग्रहणीय, विचारणीय एवं चिन्तनीय हों।'

सहस्रनाम्नां पुण्यानां त्रिरावृत्त्या तु यत्फलम्।
एकवृत्त्या तु कृष्णस्य नामैकं तत्प्रयच्छति॥

'पवित्र सहस्रनामोंकी तीन आवृत्तियाँ करनेसे जो फल मिलता है, उसे कृष्ण-नाम एक ही बारके उच्चारणसे सुलभ कर देता है।'

★

श्रीभगवन्नाम

पापानलस्य दीप्तस्य मा कुर्वन्तु भयं नराः।
गोविन्दनाममेघौघैर्नश्यते नीरबिन्दुभिः॥

(गरुडपुराण)

'हे मनुष्यो! प्रदीप्त पापाग्निको देखकर भय न करो, गोविन्दनामरूप मेघोंके जलबिन्दुओंसे इसका नाश हो जायगा।'

पापोंसे छूटकर परमात्माके परम पदको प्राप्त करनेके लिये शास्त्रोंमें अनेक उपाय बतलाये गये हैं। दयामय महर्षियोंने दुःखकातर जीवोंके कल्याणार्थ वेदोंके आधारपर अनेक प्रकारकी ऐसी विधियाँ बतलायी हैं, जिनका यथाधिकार आचरण करनेसे जीव पापमुक्त होकर सदाके लिये निरतिशयानन्द परमात्मसुखको प्राप्त कर सकता है। परंतु इस समय कलियुग है। जीवनकी अवधि बहुत थोड़ी है। मनुष्योंकी आयु प्रतिदिन घट रही है। आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक तापोंकी वृद्धि हो रही है। भोगोंकी प्रबल लालसाने प्रायः सभीको विवश और उन्मत्त बना रखा है। कामनाओंके अशेष कलङ्कसे बुद्धिपर कालिमा छा गयी है।

परिवार, कुटुम्ब, जाति या देशके नामपर होनेवाली विविध भाँतिकी मोहमयी क्रियाओंके तीव्र धारा-प्रवाहमें जगत् बह रहा है। देश और उन्नतिके नामपर धर्म, अहिंसा, सत्य और मनुष्यत्वतकका विसर्जन किया जा रहा है। सारे जगत्में कुवासनामय कुप्रवृत्तियोंका ताण्डव नृत्य हो रहा है। शास्त्रोंके कथनानुसार युगप्रभावसे या हमारे दुर्भाग्यदोषसे धर्मका एक पाद भी इस समय केवल नाममात्रको रहा है। आजकलके जीव धर्मानुमोदित सुखसे सुखी होना नहीं चाहते।

सुख चाहते हैं—अटल, अखण्ड और आत्यन्तिक सुख चाहते हैं, परन्तु सुखकी मूल भित्ति धर्मका सर्वनाश करनेपर तुले हुए हैं। ऐसी स्थितिमें सुखके स्वप्नसे भी जगत्को केवल निराश ही रहना पड़ता है। हमारी इस दुर्दशाको महापुरुषोंने और भगवद्भक्तोंने पहलेसे ही जान लिया था। इसीसे उन्होंने दयापरवश हो हमारे लिये एक ऐसा उपाय बतलाया जो इच्छा करनेपर सहजहीमें काममें लाया जा सकता है। परंतु जिसका वह महान् फल होता है जो पूर्वकालमें बड़े-बड़े यज्ञ, तप और दानसे भी नहीं होता था। वह है श्रीहरिनामका जप-कीर्तन और स्मरण! वेदान्तदर्शनके निर्माता भगवान् व्यासदेवरचित भागवतमें ज्ञानी-श्रेष्ठ शुकदेवजी महाराज शीघ्र ही मृत्युको आलिङ्गन करनेके लिये तैयार बैठे हुए राजा परीक्षित्से पुकारकर कहते हैं—

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत्॥
कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्॥

(१२।३।५१-५२)

'हे राजन्! इस दोषोंसे भरे हुए कलियुगमें एक महान् गुण यह है कि केवल श्रीकृष्णके 'नाम-कीर्तन'से ही मनुष्य सारी आसक्तियोंसे मुक्त होकर परमात्माको प्राप्त कर लेता है। सत्ययुगमें ध्यानसे, त्रेतामें यज्ञोंसे और द्वापरमें

परिचर्यासे जो पद प्राप्त होता था वही कलियुगमें केवल श्रीहरिनामकीर्तनसे प्राप्त होता है।'

इसलिये चार सौ वर्ष पूर्व बंगालके नवद्वीप नामक स्थानमें प्रेमावतार श्रीश्रीचैतन्यदेवने अवतीर्ण होकर मुक्तकण्ठसे इसी बातकी घोषणा की थी कि 'भय न करो, सबसे बड़ा प्रायश्चित्त और परमात्माके प्रेमसम्पादनका परमोत्तम साधन 'श्रीहरिनाम' है, संसारवासनाका परित्याग कर दृढ़ विश्वासके साथ इसीमें लग जाओ और अपना उद्धार कर लो।' उन्होंने केवल ऐसा कहा ही नहीं, बल्कि स्वयं लोगोंके घरोंपर जा-जाकर और अपने परम भागवत साथियोंको भेज-भेजकर येन-केन-प्रकारेण लोगोंको हरि-नाममें लगाया। जगाई-मधाई-सरीखे प्रसिद्ध पातकी हरिनामपरायण हो गये। लोगोंको इस सन्मार्गमें लगानेके कार्यमें उन्होंने गालियाँ सुनीं, कटूक्तियाँ सहीं, बल्कि श्रीनित्यानन्द और हरिदास आदि भक्तवरोंने तो भीषण प्रहार सहन करके पात्रापात्रका विचार छोड़कर जनतामें हरिनाम वितरण किया।

इसी प्रकार भक्तश्रेष्ठ कबीर, नानक, तुकाराम, रामदास, ज्ञानदेव, सोपानदेव, मीरा, तुलसीदास, सूरदास, नन्ददास, चरणदास, दादूदयाल, सुन्दरदास, सहजोबाई, दयाबाई, सखूबाई आदि भागवतोंने भी हरिनामको ही जीवोंके कल्याणका प्रधान उपाय समझा और अपनी दिव्य वाणीसे इसीका प्रचार किया। आधुनिक कालमें भी भारतवर्षमें जितने महात्मा संत हो गये हैं, सभीने एक स्वरसे मुक्त-कण्ठ होकर नाममहिमाका गान किया और कर रहे हैं।

जिस नामका इतना प्रभाव, महत्त्व और विस्तार है उसपर मुझ-जैसा रसानभिज्ञ मनुष्य क्या लिख सकता है? मेरा तो यह केवल एक तरहका दुःसाहस है, जो संतोंकी कृपा और प्रेमियोंके प्रेमके भरोसेपर ही किया जा रहा है। मैं भगवन्नामकी महिमा क्या लिखूँ? मैं तो नामका ही जिलाया जी रहा हूँ।

शास्त्रोंमें नाममहिमाके इतने अधिक प्रसङ्ग हैं कि उनकी गणना करना भी बड़ा कठिन कार्य है। इतना होते हुए भी जगत्‌के सब लोग नामपर विश्वास क्यों नहीं करते ? नामका साधन तो कठिन नहीं प्रतीत होता। पूजा, होम, यज्ञ आदिमें जितना अधिक प्रयास और सामग्रियोंका संग्रह करना पड़ता है, इसमें वह सब कुछ भी नहीं करना पड़ता। तो भी—

सब लोग नामपरायण क्यों नहीं होते ?

इसका उत्तर यह है कि नामपरायण होना जितना मुखसे सहज कहा जाता है, वास्तवमें उतना सहज नहीं है। बड़े पुण्यबलसे नाममें रुचि होती है। शास्त्र पढ़ना, उपदेश देना, बड़े-बड़े शास्त्रार्थ करना सहज है; परन्तु निश्चिन्त मनसे विश्वासपूर्वक भगवान्‌का नाम लेना बड़ा कठिन है।

जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं ॥

कुछ लोग तो इसकी ओर ध्यान ही नहीं देते, जो कुछ ध्यान देते हैं उन्हें इसका सुकरत्व (सहजपन) देखकर अश्रद्धा हो जाती है। वे समझते हैं कि जब बड़े-बड़े यज्ञ, तप, दानादि सत्कर्मोंसे ही पापवासनाका नाश होकर मनकी वृत्तियाँ शुद्ध और सात्त्विक नहीं बनतीं, तब केवल शब्दोच्चारण या शब्दस्मरणमात्रसे क्या हो सकता है ? वे लोग इसे मामूली शब्द समझकर छोड़ देते हैं। कुछ लोग पण्डिताईके अभिमानसे, शास्त्रोंके बाह्य अवलोकनसे केवल वाग्वितण्डार्थ शास्त्रार्थपटु होकर नामका आदर नहीं करते। पाश्चात्त्य शिक्षाप्राप्त पुरुष तो प्रायः आधुनिक पाश्चात्त्य सभ्यताकी मायामरीचिकामें पड़कर ऐसी बातोंको केवल गपोड़ा ही समझते हैं। कुछ सुधारका दम भरनेवाले लोग ('संसारका सुधार केवल हमारे बलपर होगा, ईश्वर वस्तु ही क्या है ? उसकी आवश्यकता तो घरबाररहित संन्यासियोंको है, हमें उससे क्या मतलब ? अच्छा काम करेंगे, अच्छा फल आप ही होगा' ऐसी भावनासे) नामका तिरस्कार करते हैं।

भगवन्नामका स्मरण प्रायः विपत्तिकालमें ही हुआ करता है। जब

मनुष्यके सब सहारे छूट जाते हैं, कहींसे कोई आशा नहीं रहती, किसीसे कोई आश्वासन नहीं मिलता, जगत्‌के लोग मुखसे नहीं बोलना चाहते; निर्धनता, निर्जनता, आरोग्यहीनता और अपमानसे मन घबड़ा उठता है, दुःखोंकी विषमयी ज्वालासे हृदय दग्ध होने लगता है; मित्र, स्नेही, सुहृद् और घरवालोंका एकान्त अभाव हो जाता है, तब प्राण रो उठते हैं। हृदय खोजता है किसी ऐसी शीतल सुरम्य वस्तुको, जिसे पाकर उसे कुछ शीतलता, कुछ शान्ति प्राप्त हो सके। ऐसे दुःसमयमें छटपटाते हुए व्याकुल प्राण स्वाभाविक ही उस अनजाने और अनदेखे हुए प्रीतमकी गोदका आश्रय ढूँढ़ते हैं, ऐसे अवसरपर बड़े-बड़े शास्त्राभिमानी, शास्त्रार्थमें तर्कयुक्तियोंसे ईश्वरका खण्डन करनेवाले, धन और पदके मदमें ईश्वरको तुच्छ समझनेवाले, विषयोंकी प्रमादमदिराके अविरत पानसे उन्मत्त होकर विचरनेवाले मनुष्योंके मुँहसे भी सहसा ऐसे उद्‌गार निकल पड़ते हैं कि 'हे राम! हे ईश्वर! तू ही बचा! तेरे बिना अब और कोई सहारा नहीं है।' ऐसे ही विपद्-संकुल समयमें जिह्वा स्वच्छन्दतासे भगवन्नामका उच्चारण करने लगती है और ऐसे ही शोकमोहपूर्ण समयमें मन और प्राण भी उसका स्मरण करने लग जाते हैं। इसी लोभसे तो माता कुन्तीने भगवान् श्रीकृष्णसे विपत्तिका वरदान माँगा था। उसने कहा था कि 'हे कृष्ण! तेरा स्मरण विपत्तिमें ही होता है, इसलिये मुझे बार-बार विपत्तिके जालमें डालता रह!'

तात्पर्य यह कि भगवन्नामका स्मरण प्रायः दुःखकालमें होता है दुःखी, अनाश्रित और दीनजन ही प्रायः उसका नाम लिया करते हैं इसलिये कुछ लोग जो विषयोंके बाहुल्यसे मोहवश अपनेको बड़ा, बुद्धिमान्, धन-जनवान् और सुखी मानते हैं, भगवन्नाम लेकर अपनी समझसे दीन-दुःखी और अनाश्रितोंकी श्रेणीमें सम्मिलित होना नहीं चाहते।

कुछ ज्ञानाभिमानी लोग ज्ञानके अभिमानमें हरिनामको गौण या मन्द साधन समझकर त्याग देते हैं। जनता अधिकतर संसारमें बड़े लोग

कहलानेवालोंके पीछे ही चला करती है। यही सब कारण है कि सब लोग हरिनामके परायण नहीं होते।

एक कारण और है जिससे नामके विस्तारमें बड़ी बाधा पड़ती है, वह है नामको पापका साधन बना लेना। ऐसे लोग संसारमें बहुत हैं जो पाप करनेमें जरा-सा भी संकोच नहीं करते और समझ बैठते हैं कि नाम लेते ही पापका नाश हो जायगा। इसमें कोई संदेह नहीं कि हरिनाम पापरूपी घासके बड़े ढेरको जलानेके लिये साक्षात् अग्नि है। बड़े-से-बड़े पाप नामके उच्चारणमात्रसे नष्ट हो जाते हैं।

वैशम्पायनसंहितामें कहा है—

सर्वधर्मबहिर्भूतः सर्वपापरतस्तथा।
मुच्यते नात्र सन्देहो विष्णोर्नामानुकीर्तनात्॥

सर्वधर्मत्यागी और सर्वपापनिरत पुरुष भी यदि हरि-नाम-कीर्तन करता है तो वह पापोंसे छूट जाता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि पूर्वके पापोंका नाश करनेके लिये हरिनाम सबसे बड़ा और शीघ्र फलदायक प्रायश्चित्त है। नामके प्रतापसे पापी-से-पापी मनुष्य भी भगवान्‌के परमपदको प्राप्त हो जाता है, परंतु जो मनुष्य जान-बूझकर हरि-नामकी दुहाई देकर मनमें दृढ़ सङ्कल्प करके पापोंमें प्रवृत्त होता है उसका कहीं निस्तार नहीं होता। रोगनिवृत्तिके लिये ही औषधका सेवन किया जाता है; परंतु जो लोग बीमारी बढ़ानेके लिये दवा लेते हैं उनके सिवा मरनेके और क्या फल मिल सकता है? पद्मपुराणका वचन है—

नाम्नो बलाद् यस्य हि पापबुद्धिर्न विद्यते तस्य यमैर्हि शुद्धिः।

'जो नामका सहारा लेकर पापोंमें प्रवृत्त होता है वह अनेक प्रकारकी यम-यातना भोग करनेपर भी शुद्ध नहीं होता।'

जे नर नामप्रताप बल, करत पाप नित आप।
बज्रलेप ह्वै जायँ ते, अमिट सुदुष्कर पाप॥

इसमें कोई सन्देह नहीं कि—

परदाररतो वापि परापकृतिकारकः।
संशुद्धो मुक्तिमाप्नोति हरेर्नामानुकीर्तनात्॥

(मत्स्यपुराण)

'परस्त्रीगामी और परपीडनकारी मनुष्य भी हरि-नाम-कीर्तनसे शुद्ध होकर मुक्तिको प्राप्त हो जाता है।' इसमें भी कोई सन्देह नहीं है कि भागवतके कथनानुसार चोर, शराबी, मित्रद्रोही, स्त्री, राजा, पिता, गौ तथा ब्राह्मणकी हत्या करनेवाला, गुरुपत्नीगामी और अन्यान्य बड़े-बड़े पापोंमें रत रहनेवाला पुरुष भी भगवान्‌के नामग्रहणमात्रसे तत्काल मुक्त हो जाता है—

पातक उप-पातक महा, जेते पातक और।
नाम लेत तत्काल सब, जरत खरत तेहि ठौर॥

पहलेके कितने भी बड़े-बड़े पाप सञ्चित क्यों न हों, सच्चे मनसे भगवन्नाम लेते ही वे सब अग्निमें ईंधनकी तरह जल जाते हैं। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि भगवन्नाम लेनेवालोंको पाप करनेके लिये छूट मिल जाती है। भगवान्‌का नाम भी लेंगे और साथ-ही-साथ मनमाने पाप भी करते रहेंगे, इस प्रकारकी जिनकी कुवासना है, उनके लिये तो फल उलटा ही होता है। नाम-महिमाकी दुहाई देकर पाप करनेवालेको नरकमें भी जगह नहीं मिलती। जो लोग जान-बूझकर धनके लोभसे चोरी करके, परस्त्रीगमन करके, क्रोध या लोभवश हिंसा करके, गुरु-शास्त्रोंका अपमान करके, मद्यपान-म्लेच्छ-भोजनादि करके, स्त्री-हत्या, भ्रूण-हत्या करके और झूठी गवाही देकर या झूठा मामला सजा करके 'राम-राम' कह देते हैं और अपना छुटकारा मान लेते हैं। उनके पापोंका नाश नहीं होता। उनके पाप तो वज्रलेप हो जाते हैं। ऐसे ही लोगोंको देखकर अच्छे लोग भी नाम-महिमाको अर्थवाद (स्तुतिमात्र) समझकर नामपरायण नहीं होते। परन्तु यह उनकी भूल है—

नाममहिमा केवल रोचक वाक्य नहीं—

यह सर्वथा यथार्थ तत्त्व है। बड़े-बड़े ऋषियों और संतमहात्माओंने नाम-महिमाका प्रत्यक्ष अनुभव करके ही उसके गुण गाये हैं। अब भी ऐसे लोग मिल सकते हैं जिन्हें नामकी प्रबल शक्तिका अनेक बार अनेक तरहसे अनुभव हो चुका है। परन्तु वे लोग उन सब रहस्योंको अश्रद्धालु और नामापमानकारी लोगोंके सामने कहना नहीं चाहते, क्योंकि यह भी एक नामका अपराध है—

अश्रद्दधाने विमुखेऽप्यशृण्वति
यश्चोपदेशः शिवनामापराधः।

'अश्रद्धालु, नाम-विमुख और सुनना न चाहनेवालेको नामका उपदेश करना कल्याणरूप नामका एक अपराध है।'

जो नामके रसिक हैं, जिन्हें इसमें असली रसास्वादका कभी अवसर प्राप्त हो गया है वे तो फिर दूसरी ओर भूलकर भी नहीं ताकते। न उन्हें शरीरकी कुछ परवा रहती है और न जगत्‌की। मतवाले शराबीकी तरह नामप्रेममें मस्त हुए वे कभी हँसते हैं, कभी रोते हैं, कभी गाते हैं, कभी नाचते हैं। उनके लिये फिर कोई अपना-पराया नहीं रह जाता। ऐसे ही प्रेमियोंके सम्बन्धमें महात्मा सुन्दरदासजी लिखते हैं—

प्रेम लग्यो परमेश्वरसों तब भूलि गयो सिगरो घरबारा।
ज्यों उन्मत्त फिरे जित ही तित नेकु रही न सरीर सँभारा॥
स्वास उस्वास उठै सब रोम चले दृग नीर अखंडित धारा।
सुन्दर कौन करै नवधाविधि छाकि पर्‌यो रस पी मतवारा॥

वास्तवमें ऐसे ही पुरुष नामके यथार्थ भक्त हैं, और इन्हीं लोगोंद्वारा किया हुआ नामोच्चारण जगत्‌को पावन कर देता है, जहाँतक ऐसी प्रेमकी मस्ती न प्राप्त हो, वहाँतक प्रेममार्गमें भी शास्त्रोंकी मर्यादाका पूरा रक्षण करना चाहिये। भगवान् नारद कहते हैं—

अन्यथा पातित्याशङ्कया। (नारदभक्तिसूत्र १३)

'नहीं तो पतित होनेकी आशङ्का है', अतएव आरम्भमें अपने-अपने वर्णाश्रमानुमोदित सन्ध्या-वन्दन, पिता-माता आदिकी सेवा, परिवारसंरक्षण आदि वैदिक और लौकिक कार्योंको करते हुए श्रीभगवन्नामका आश्रय ग्रहण करना चाहिये। स्मृतिविहित कर्मके त्यागकी आवश्यकता नहीं है, यथासमय और यथास्थान उनका आचरण अवश्य करना चाहिये। रामनाम ऐसा धन नहीं है जो ऐसे-वैसे कामोंमें खर्च किया जाय। जो मनुष्य मामूली-सा काँचका टुकड़ा खरीदने जाकर बदलेमें बहुमूल्य हीरा दे आता है वह कभी बुद्धिमान् नहीं कहलाता। इसी प्रकार जो कार्य लौकिक या स्मृति-विहित कर्मोंके आचरणसे सिद्ध हो सकता है, उसमें नामका प्रयोग करना राजाधिराजसे झाड़ू दिलवानेके समान है—सोनेको मिट्टीके भाव बेचनेके समान है; अतएव नाम-जपमें स्मृतिविहित कर्मोंके त्यागकी कोई आवश्यकता नहीं।

कुछ लोगोंकी यह शङ्का है कि आजकल नाम लेनेवाले तो बहुत लोग देखे जाते हैं, परंतु उनकी दशा देखते हैं तो मालूम होता है कि उनको कोई लाभ नहीं हुआ। जिस नामके एक बार उच्चारण करनेमात्रसे सम्पूर्ण पापोंका नाश होना बतलाया जाता है, उस नामकी लाखों बार आवृत्ति करनेपर भी लोग पापोंमें प्रवृत्त और दुःखी देखे जाते हैं, इसका क्या कारण है ? इसके उत्तरमें पहली बात तो यह है कि लाखों बार नामकी आवृत्ति उनके द्वारा वस्तुतः होती नहीं, धोखेसे समझ ली जाती है। दूसरा कारण यह है कि उनकी नाममें यथार्थ श्रद्धा नहीं है। नामके इस माहात्म्यमें उन्हें स्वयं ही संशय है। भगवान्‌ने गीतामें कहा है—'**संशयात्मा विनश्यति**', इसीलिये उन्हें पूरा लाभ नहीं होता। भजनमें श्रद्धा ही फलसिद्धिका मुख्य साधन है। अवश्य ही भजन करनेवालेमें श्रद्धाका कुछ अंश तो रहता ही है। यदि श्रद्धाका सर्वथा अभाव हो तो भजनमें प्रवृत्ति ही न हो। बिना किञ्चित् श्रद्धा हुए किसी कार्यविशेषमें प्रवृत्त होना बड़ा कठिन है। अतएव जो नाम ग्रहण

करते हैं उनमें श्रद्धाका कुछ अंश तो अवश्य है, परंतु श्रद्धाके उस क्षुद्र अंशकी अपेक्षा संशयकी मात्रा कहीं अधिक है, इसीलिये उन्हें वास्तविक फलसे वञ्चित रहना पड़ता है। गङ्गास्नानसे पापोंका अशेष नाश होना बतलाया गया है; परन्तु नित्य गङ्गास्नान करनेवाले लोग भी पापमें प्रवृत्त होते देखे जाते हैं (यद्यपि एक बारका भी भगवन्नाम हजारों बारके गङ्गा-स्नानसे बढ़कर है)।

श्रद्धापर एक दृष्टान्त

एक समय शिवजी महाराज पार्वतीके साथ हरिद्वारमें घूम रहे थे। पार्वतीने देखा कि सहस्रों मनुष्य गङ्गामें नहा-नहाकर हर-हर करते चले जा रहे हैं; परंतु प्रायः सभी दुःखी और पापपरायण हैं। पार्वतीने बड़े आश्चर्यके साथ शिवजीसे पूछा कि 'हे देवदेव! गङ्गामें इतनी बार स्नान करनेपर भी इनके पाप और दुःखोंका नाश क्यों नहीं हुआ? क्या गङ्गामें सामर्थ्य नहीं रही?' शिवजीने कहा—'प्रिये! गङ्गामें तो वही सामर्थ्य है; परंतु इन लोगोंने पापनाशिनी गङ्गामें स्नान ही नहीं किया है तब इन्हें लाभ कैसे हो?' पार्वतीने साश्चर्य कहा कि 'स्नान कैसे नहीं किया? सभी तो नहा-नहाकर आ रहे हैं? अभीतक इनके शरीर भी नहीं सूखे हैं।' शिवजीने कहा—'ये केवल जलमें डुबकी लगाकर आ रहे हैं। तुम्हें कल इसका रहस्य समझाऊँगा।' दूसरे दिन बड़े जोरकी बरसात होने लगी। गलियाँ कीचड़से भर गयीं। एक चौड़े रास्तेमें एक गहरा गड्ढा था, चारों ओर लपटीला कीचड़ भर रहा था। शिवजीने लीलासे ही वृद्धरूप धारण कर लिया और दीन—विवशकी तरह गड्ढेमें जाकर ऐसे पड़ गये जैसे कोई मनुष्य चलता-चलता गड्ढेमें गिर पड़ा हो और निकलनेकी चेष्टा करनेपर भी न निकल सकता हो।

पार्वतीको यह समझाकर गड्ढेके पास बैठा दिया कि 'देखो! तुम लोगोंको सुना-सुनाकर यों पुकारती रहो कि मेरे वृद्ध पति अकस्मात् गड्ढेमें गिर पड़े हैं, कोई पुण्यात्मा इन्हें निकालकर इनके प्राण बचावे और मुझ

असहायकी सहायता करे।' शिवजीने यह और समझा दिया कि जब कोई गड्ढेमेंसे मुझे निकालनेको तैयार हो तब इतना और कह देना कि 'भाई ! मेरे पति सर्वथा निष्पाप हैं, इन्हें वही छुए जो स्वयं निष्पाप हो, यदि आप निष्पाप हैं तो इनके हाथ लगाइये, नहीं तो हाथ लगाते ही आप भस्म हो जायँगे।' पार्वती 'तथास्तु' कहकर गड्ढेके किनारे बैठ गयीं और आने-जानेवालोंको सुना-सुनाकर शिवजीकी सिखायी हुई बात कहने लगीं। गङ्गामें नहाकर लोगोंके दल-के-दल आ रहे हैं। सुन्दरी युवतीको यों बैठी देखकर कइयोंके मनमें पाप आया, कई लोक-लज्जासे डरे तो कइयोंको कुछ धर्मका भय हुआ, कई कानूनसे डरे। कुछ लोगोंने तो पार्वतीको यह सुना भी दिया कि मरने दे बुड्ढेको ! क्यों उसके लिये रोती है ? आगे और कुछ भी कहा, मर्यादा भंग होनेके भयसे वे शब्द लिखे नहीं जाते। कुछ दयालु सच्चरित्र पुरुष थे, उन्होंने करुणावश हो, युवतीके पतिको निकालना चाहा, परंतु पार्वतीके वचन सुनकर वे भी रुक गये। उन्होंने सोचा कि हम गङ्गामें नहाकर आये हैं तो क्या हुआ, पापी तो हैं ही, कहीं होम करते हाथ न जल जायँ। बूढ़ेको निकालने जाकर इस स्त्रीके कथनानुसार हम स्वयं भस्म न हो जायँ। सुतरां किसीका साहस नहीं हुआ। सैकड़ों आये, सैकड़ोंने पूछा और चले गये। सन्ध्या हो चली। शिवजीने कहा—'पार्वती ! देखा, आया कोई गङ्गामें नहानेवाला ?'

थोड़ी देर बाद एक जवान हाथमें लोटा लिये हर-हर करता हुआ निकला, पार्वतीने उससे भी वही बात कही। युवकका हृदय करुणासे भर आया। उसने शिवजीको निकालनेकी तैयारी की। पार्वतीने रोककर कहा कि 'भाई ! यदि तुम सर्वथा निष्पाप नहीं होओगे तो मेरे पतिको छूते ही जल जाओगे।' उसने उसी क्षण बिना किसी संकोचके दृढ़ निश्चयके साथ पार्वतीसे कहा कि 'माता ! मेरे निष्पाप होनेमें तुझे संदेह क्यों होता है ? देखती नहीं, मैं अभी गङ्गा नहाकर आया हूँ। भला गङ्गामें गोता लगानेके

बाद भी कभी पाप रहते हैं ? तेरे पतिको निकालता हूँ।' युवकने लपककर बूढ़ेको ऊपर उठा लिया। शिव-पार्वतीने उसे अधिकारी समझकर अपना असली स्वरूप प्रकट कर उसे दर्शन देकर कृतार्थ किया। शिवजीने पार्वतीसे कहा कि 'इतने लोगोंमेंसे इस एकने ही वास्तवमें गङ्गास्नान किया है।' इसी दृष्टान्तके अनुसार जो लोग बिना श्रद्धा और विश्वासके केवल दम्भके लिये नाम-ग्रहण करते हैं, उन्हें वास्तविक फल नहीं मिलता; परंतु इसका यह मतलब नहीं कि नाम-ग्रहण व्यर्थ जाता है।

नामका फल अवश्य होता है—

परंतु जैसा चाहिये वैसा नहीं होता। दम्भार्थ नाम लेनेवाले भी संसारमें पूजे जाते हैं। उनके पापोंका नाश भी होता ही है, परंतु अनन्त जन्मोंके सञ्चित और इस समय भी लगातार होनेवाले अनन्त पाप श्रद्धारहित नामसे पूरे नष्ट नहीं हो पाते। नामसे पूरा फल प्राप्त न होनेमें श्रद्धाके अतिरिक्त एक और प्रधान कारण है—

साधकका सकाम भाव !

हम बहुत बड़ी मूल्यवान् वस्तुको बहुत सस्ते दामोंपर बेच देते हैं। सिरमें मामूली दर्द होता है तो उसे मिटानेके लिये "राम-राम" कहते हैं। सौ-पचास रुपयोंकी कमाईके लिये राम-नाम लेते हैं। स्त्री, बच्चोंकी आरोग्यताके लिये राम-नाम लेते हैं। मान-बड़ाई पानेके लिये राम-नाम कहते हैं। सन्तान-सुखके लिये राम-नाम कहते हैं। फल यह होता है कि हम राम-नाम लेनेपर भी कमानेके साथ ही लुटानेवाले मूर्खके समान जैसे-के-तैसे ही रह जाते हैं। चलनीमें जितना भी पानी भरते रहो, सभी निकल जायगा। हमारा अन्तःकरण भी कामनाओंके अनन्त छेदोंसे चलनी हो रहा है। इसमें कुछ भी ठहरता नहीं। राम-नामका फल कैसे हो ? प्यास लगी हुई है, जगत्में सुखकी पिपासा किसको नहीं है ? पवित्र जलका भी झरना झर रहा है, राम-नामके झरनेका प्रवाह सदा ही अबाधितरूपसे बहता है,

परंतु हम अभागे उस झरनेके आगे अञ्जलि बाँधकर जल ग्रहण नहीं करते। हम उसके आगे रखते हैं हजारों छेदोंवाली चलनी, जिसमें न तो कभी पानी ठहरता है और न हमारी प्यास ही बुझती है। सकामभावसे लिये हुए नामसे भी, नामके असली फल—आत्यन्तिक सुखसे—हम इसी प्रकार वञ्चित रह जाते हैं। प्रथम तो कोई भगवन्नाम लेता ही नहीं और यदि कोई लेता है तो वह सकामभावसे, धन-सन्तान, मान-बड़ाईकी वृद्धिके लिये लेता है। नियमानुसार फलमें जहाँ-का-तहाँ ही रहना पड़ता है। परंतु नामकी महिमा अपार है। इस प्रकार लिये हुए नामसे भी फल तो होता ही है। सकाम कर्मकी सिद्धि भी होती है और आगे चलकर भगवद्भक्ति भी प्राप्त होती है। जब इन पंक्तियोंका क्षुद्र लेखक सकामभावसे नाम-जप किया करता था तब कई बार उसकी ऐसी विपत्तियाँ टली हैं जिनके टलनेकी कोई भी आशा नहीं थी। केवल वह विपत्तियाँ ही नहीं टलीं, उसका और फल भी हुआ। नाममें रुचि बढ़ी और आगे चलकर निष्कामभाव भी हो गया। भगवन्नाम लेनेका अन्तिम परिणाम है भगवान्‌में एकान्त प्रेम हो जाना। एकान्त प्रेम होनेके बाद प्रेममयके मिलनेमें जरा-सा भी विलम्ब नहीं होता जैसे ध्रुवको और विभीषणको राज्यकी भी प्राप्ति हुई और भगवत्प्रेमकी भी। इसीलिये शास्त्रोंमें चाहे जैसे भगवन्नाम लेनेवालेको भी बड़ा उत्तम बतलाया है, भगवान्‌ने गीतामें इसीलिये अर्थार्थी भक्तको भी उदार और पुण्यात्मा बतलाया है और अन्तमें **'मद्भक्ता यान्ति मामपि'** कहकर चाहे जिस प्रकार भी भगवद्भक्ति करनेवालेको अपनी प्राप्ति कही है, क्योंकि सकामभावसे अन्य सबकी आशा छोड़कर, अन्य सबका आश्रय त्यागकर केवल भगवान्‌की भक्तिके परायण होना भी बड़े भारी पुण्योंका फल है। अतएव सकामभावसे भगवान्‌के नाम-ग्रहण करनेवाले लोग भी बड़े पूज्य और मान्य हैं; परंतु उनको सकामभावकी प्रतिबन्धकताके कारण नामके वास्तविक फल नामीके प्रेमकी या स्वयं नामीकी प्राप्तिमें विलम्ब अवश्य हो जाता है। इससे यह सिद्ध हो

गया कि नामसे फल तो अवश्य होता है, परंतु अश्रद्धा, अविश्वास और कामनाके कारण उसके असली फलकी प्राप्तिमें देर हो जाती है। यदि साधक इस अपने दोषसे होनेवाली देरीका दोष नामपर लगाकर उसे अर्थवाद कहता है तो यह भी उसका अपराध है।

नामके दस अपराध बतलाये गये हैं—(१) सत्पुरुषोंकी निन्दा, (२) नामोंमें भेदभाव, (३) गुरुका अपमान, (४) शास्त्र-निन्दा, (५) हरिनाममें अर्थवाद (केवल स्तुतिमात्र है ऐसी) कल्पना, (६) नामका सहारा लेकर पाप करना, (७) धर्म, व्रत, दान और यज्ञादिके साथ नामकी तुलना, (८) अश्रद्धालु, हरिविमुख और सुनना न चाहनेवालेको नामका उपदेश करना, (९) नामका माहात्म्य सुनकर भी उसमें प्रेम न करना और (१०) 'मैं', 'मेरे' तथा भोगादि विषयोंमें लगे रहना।

यदि प्रमादवश इनमेंसे किसी तरहका नामापराध हो जाय तो उससे छूटकर शुद्ध होनेका उपाय भी पुनः नाम-कीर्तन ही है। भूलके लिये पश्चात्ताप करते हुए नामका कीर्तन करनेसे नामापराध छूट जाता है। पद्मपुराणका वचन है—

नामापराधयुक्तानां नामान्येव हरन्त्यघम्।
अविश्रान्तप्रयुक्तानि तान्येवार्थकराणि च॥

नामापराधी लोगोंके पापोंको नाम ही हरण करता है। निरन्तर नाम-कीर्तनसे सभी मनोरथ सिद्ध होते हैं। नामके यथार्थ माहात्म्यको समझकर जहाँतक हो सके, नाम लेनेमें कदापि इस लोक और परलोकके भोगोंकी जरा-सी भी कामना नहीं करनी चाहिये। यद्यपि ऊपर लिखे अनुसार नाम-जपसे कामनासिद्धिके सिवा अन्तःकरणकी शुद्धि होकर भगवद्भक्तिरूप विशेष फल भी मिलता है, परंतु नियम यही है कि जैसी कामना हो—साङ्गोपाङ्ग कर्म होनेपर—वैसा ही फल मिल जाय। जो लोग भगवन्नामका साधारण बातोंमें प्रयोग करते हैं वे वास्तवमें भगवन्नामकी अपार महिमासे सर्वथा अनभिज्ञ हैं या उसपर उनका विश्वास नहीं है। जो

रत्नके मूल्यसे अनभिज्ञ होगा वही उसे काँचके मोलपर बेचेगा।

भगवन्नामके मूल्यपर एक दृष्टान्त

एक श्रद्धालु भक्त प्रतिदिन गाँवके बाहर एक महात्माके पास जाया करता था। जब महात्माकी सेवा करते-करते उसे बहुत दिन बीत गये तब महात्माने उसे अधिकारी समझकर कहा कि 'वत्स ! तेरी मति भगवान्में है, तू श्रद्धालु है, गुरुसेवापरायण है, कुतार्किक नहीं है, साधनमें आलसी नहीं है, शास्त्रके वचनोंमें विश्वासी है, किसीका बुरा नहीं चाहता, किसीसे घृणा और द्वेष नहीं करता, सरल-चित्त है, काम, क्रोध, लोभसे डरता है, संतोंका उपासक है और जिज्ञासु है; इसलिये तुझे एक ऐसा गोपनीय मन्त्र देता हूँ जिसका पता बहुत ही थोड़े लोगोंको है। यह मन्त्र परम गुप्त और अमूल्य है, किसीसे कहना नहीं !' यों कहकर महात्माने उसके कानमें धीरेसे कह दिया 'राम'। श्रद्धालु भक्त मन्त्रराज 'राम' का जप करने लगा। वह एक दिन गङ्गा नहाकर लौट रहा था तो उसका ध्यान उन लोगोंकी तरफ गया तो हजारोंकी संख्यामें उसीकी तरह गङ्गा नहाकर जोर-जोरसे 'राम-राम' पुकारते चले आ रहे थे। सुनता तो रोज ही था परंतु कभी इस ओर उसका ध्यान नहीं गया था। आज ध्यान जाते ही उसके मनमें यह विचार आया कि महात्मा तो राममन्त्रको बड़ा गुप्त बतलाते थे, मुझसे कह भी दिया था कि किसीसे कहना नहीं, परंतु इसको तो सभी जानते हैं, हजारों मनुष्य 'राम-राम' पुकारते हुए चलते हैं। उसके मनमें कुछ संशय उत्पन्न हो गया। वह अपने घर न जाकर सीधा गुरुके समीप गया। महात्माने कहा कि 'वत्स ! आज इस समय कैसे आया ?' उसने अपना संशय सुनाकर कहा कि 'प्रभो ! मेरे समझनेमें भ्रम हुआ है या इसका और कोई मतलब है ? अपनी दिव्यवाणीसे मेरा संदेह दूर करनेकी कृपा कीजिये।' महात्माने उसके मनकी बात जान ली और कहा कि 'भाई ! तेरे प्रश्नका उत्तर पीछे दिया जायगा। पहले तू मेरा एक काम कर।' महात्माने झोलीमेंसे एक चमकती

हुई काँचकी-सी गोली निकाली और उसे भक्तके हाथमें देकर कहा कि 'बाजारमें जाकर इसकी कीमत करवाके लौट आ। बेचना नहीं है, सिर्फ कीमत जाननी है। सावधान ! कीमत अँकानेमें कहीं भूल न हो जाय। भक्त श्रद्धालु था, आजकलका-सा कोई होता तो पहले ही गुरु महाराजको आड़े हाथों लेता और कहता कि मैं तुम्हारे काँचके टुकड़ेकी कीमत जँचवाने नहीं आया हूँ, तुम्हारा कोई गुलाम नहीं हूँ। पहले मेरे प्रश्नका उत्तर दो, नहीं तो मेरे साथ छल करनेके अपराधमें तुमपर कोर्टमें नालिश की जायगी।' वह समय दूसरा था। भक्त अपना प्रश्न वहीं छोड़कर गुरुका काम करनेके लिये बाजारमें गया। सबसे पहले एक शाक बेचनेवाली मिली। भक्तने गुरुकी चीज उसे दिखलाकर कहा कि 'इसकी क्या कीमत देगी ?' शाक बेचनेवाली पत्थरकी चमक और सुन्दरता देखकर सोचा कि बच्चोंके खेलनेके लिये काँचकी बड़ी सुन्दर गोली है। बाजारमें कहीं ऐसी नहीं मिलती। उसने कहा—'सेर-दो-सेर आलू या बैगन ले लो।' वह आगे बढ़ा, एक सुनारकी दूकान थी वहाँ ठहरा। सुनारको गोली दिखलाकर पूछा—'भाई ! इसकी क्या कीमत दोगे ?' सुनारने हाथमें लेकर देखा और उसे अच्छा पुखराज (नकली हीरा) समझकर सौ रुपये देनेको कहा। भक्तकी भी दिलचस्पी बढ़ी, वह और आगे बढ़ा, एक महाजनके यहाँ गया। महाजनने गोली देखकर मनमें विचार किया कि इतना बड़ा और ऐसा अच्छा हीरा तो जगत्में कहाँसे होगा ? है तो पुखराज ही, परंतु हीरा-सा लगता है। बड़े घरमें नकली भी असली ही समझा जाता है, उसने हजार रुपयोंमें माँगा। भक्तने सोचा कि हो-न-हो, है तो कोई बड़ी मूल्यवान् वस्तु। वह और आगे बढ़ा और एक जौहरीकी दूकानपर गया। जौहरीने परीक्षा की तो उसे हीरा ही मालूम दिया, परंतु इतना बड़ा और ऐसा हीरा कभी उसने देखा ही न था, इसलिये उसे कुछ सन्देह रहा तथापि उसने एक लाख रुपयेमें माँगा। भक्त 'बेचना नहीं है' कहकर एक सबसे बड़े जौहरीकी दूकानपर गया। जब

****

गुरुके पाससे आया था तब तो उसे जौहरियोंके पास जानेका साहस ही नहीं था, वह स्वयं उसे मामूली काँच समझता था, परंतु ज्यों-ज्यों कीमत बढ़ती गयी त्यों-त्यों उसका भी साहस बढ़ता गया। बड़े जौहरीने हीरा देखकर कहा कि 'भाई! यह तो अमूल्य है। इस देशकी सारी जवाहरात इसके मूल्यमें दे दी जाय तब भी इसका मूल्य पूरा नहीं होता। इसे बेचना नहीं।' यह सुनकर भक्तने विचार किया कि अब तो सीमा हो चुकी।

वह लौटकर महात्माके पास गया और बोला कि 'महाराज! इसकी कीमत कोई कर ही नहीं सकता, यह तो अमूल्य वस्तु है।' गुरुने पूछा कि 'तुमको यह किसने बताया?' भक्तने कहा कि 'प्रभो! मैंने यहाँसे बाजारमें जाकर पहले शाकवालीसे पूछा तो सेर-दो-सेर शाक देना स्वीकार किया, सुनारने सौ रुपये कहे, महाजनने हजार, जौहरीने लाख और अन्तमें सबसे बड़े जौहरीने इसे अमूल्य बतलाते हुए यह कहा कि यदि देशकी सारी जवाहरात इसके बदलेमें दे दी जाय तब भी इसका मूल्य पूरा नहीं होता।' महात्माने उससे रत्न लेकर अपनी झोलीमें रख लिया। भक्तने कहा कि 'महाराज! अब मेरी शङ्का-निवारण कीजिये।' महात्माने कहा—'भाई! मैं तो तुझे शङ्का-निवारणके लिये दृष्टान्तसहित उपदेश दे चुका। तू अभी नहीं समझा, इसलिये फिर समझाता हूँ। इस रत्नकी कीमत करानेमें ही तेरी शङ्का दूर होनी चाहिये थी। रत्न अमूल्य था, परंतु उसकी असली पहचान केवल सबसे बड़े जौहरीको ही हुई, दूसरे नहीं पहचान सके। यदि मैंने तुझे बेचनेके लिये आज्ञा दे दी होती तो तू दो सेरके बदले पाँच-सात सेर शाकके मूल्यपर इसे बेच ही देता आगे बढ़ता ही नहीं। अमूल्य वस्तु कौड़ीके मूल्य चली जाती। कितना बड़ा नुकसान होता। इसी प्रकार श्रीराम-नाम भी गुप्त और अमूल्य पदार्थ है, इसकी पहचान सबको नहीं है और न इसका मूल्य ही सब कोई जानते हैं। चीज हाथमें होनेपर भी जबतक उसकी पहचान नहीं होती, तबतक उसका असलीपन गुप्त ही रहता है। इसी तरह राम-नामके

असली महत्त्वको भी बहुत कम लोग जानते हैं। जो राम-नामका व्यवसाय करते हैं वे बेचारे बड़े दयाके पात्र हैं। क्योंकि वे इस अमूल्य धन राम-नामको कौड़ीके मूल्यपर बेच देते हैं। इसीसे परम मूल्यवान् रत्नको दो सेर शाकके बदलेमें बेच देनेवाले मूर्खके समान वे सदा ही भक्ति और प्रेममें दरिद्री ही रहते हैं। भक्ति और प्रेमके हुए बिना परमात्मा नहीं मिलते और परमात्माको प्राप्त किये बिना दुःखोंसे कभी छुटकारा नहीं हो सकता। दुःखोंकी आत्यन्तिक निवृत्ति परमात्माको प्राप्त करनेमें ही है और उस—

परमात्माकी प्राप्तिका परम साधन श्रीभगवन्नाम है—

इसलिये भगवन्नामका किसी भी दूसरे काममें प्रयोग नहीं करना चाहिये। भगवन्नाम लेना चाहिये केवल भगवान्के लिये। भगवान्के लिये भी नहीं, उसके प्रेमके लिये—प्रेमके लिये भी नहीं परंतु इसलिये कि लिये बिना रहा नहीं जाता। मनकी वृत्तियाँ ऐसी बन जानी चाहिये कि जिससे भजन हुए बिना एक क्षण भी चैन नहीं पड़े। जैसे श्वास रुकते ही गला घुट जाता है—प्राण अत्यन्त व्याकुल होकर छटपटाने लगते हैं, इसी प्रकार भजनमें जरा-सी भी भूल होनेसे, क्षणभरके लिये भी भजन छूटनेमें प्राण छटपटाने लगें। इसीलिये भगवान् नारद कहते हैं—

'अव्यावृतभजनात्'

तैलधारावत् निरन्तर भजन करनेसे ही प्रेमकी प्राप्ति होती है। भजनमें सबसे पहले नामकी आवश्यकता है। जिसका भजन करना होता है, सर्वप्रथम उसका नाम जानना पड़ता है। इसलिये नाम ही भजनका मूल है। इस—

—नाम-भजनके कई प्रकार—

—हैं, जप, स्मरण और कीर्तन। इनमें सबसे पहले जपकी बात कही जाती है। परमात्माके जिस नाममें रुचि हो, जो अपने मनको रुचिकर हो उसी नामकी परमात्माकी भावनासे बारम्बार आवृत्ति करनेका नाम जप है। जपकी शास्त्रोंमें बड़ी महिमा है। जपको यज्ञ माना है और श्रीगीताजीमें भगवान्के

इस कथनसे कि **'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि'** (यज्ञोंमें जप-यज्ञ मैं हूँ) जपका महत्त्व बहुत ही बढ़ गया है। जपके तीन प्रकार हैं—साधारण, उपांशु और मानस। इनमें पूर्व-पूर्वसे उत्तर-उत्तर दस गुण अधिक फलदायक है। भगवान् मनु कहते हैं—

विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः।
उपांशुः स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः॥

दर्श-पौर्णमासादि विधियज्ञोंसे (यहाँ मनु महाराजने भी विधियज्ञोंसे जप-यज्ञको ऊँचा मान लिया है) साधारण जप दस गुण श्रेष्ठ है, उपांशु-जप सौ गुण श्रेष्ठ है और मानस-जप हजार गुण श्रेष्ठ है।

जो फल साधारण जपके हजार मन्त्रोंसे होता है वही फल उपांशु जपके सौ मन्त्रोंसे और मानस-जपके एक मन्त्रसे हो जाता है। उच्च स्वरसे होनेवाले जपको साधारण जप कहते हैं (परंतु यह कीर्तन नहीं है)। जिसमें जिह्वा और ओष्ठ तो हिलते हैं, परंतु शब्द अंदर ही रहता है वह उपांशु जप है और जिसमें न जीभके हिलानेकी आवश्यकता होती है और न होठके, वह मानसिक जप कहलाता है। उच्च स्वरसे उपांशु उत्तम और उपांशुसे मानसिक उत्तम है। यह जपकी विधि है, किसी भी देवताका कैसा ही मन्त्र क्यों न हो, यह विधि सबके लिये एक-सी है। परंतु भगवन्नाम-जपका तो कुछ विलक्षण ही फल होता है। यह नामकी अलौकिक महिमा है। दूसरे जपोंमें अनेक प्रकारके विधिनिषेध होते हैं, शुद्धि-अशुद्धिका बड़ा विचार करना पड़ता है, परंतु भगवन्नाममें ऐसी कोई बात नहीं।

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

'अपवित्र हो, पवित्र हो, किसी भी अवस्थामें क्यों न हो भगवान् पुण्डरीकाक्षका स्मरण करते ही बाहर और भीतरकी शुद्धि हो जाती है।' जल-मृत्तिकासे केवल बाहरकी ही शुद्धि होती है। परंतु भगवन्नाम अन्तरके

मलोंको भी अशेषरूपसे धो डालता है, इसका किसीके लिये किसी अवस्थामें भी कोई निषेध नहीं है।

पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ।
सर्व भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ॥

कलिसन्तरणोपनिषद्

—में नाम-जपकी विधि और उसके फलका बड़ा सुन्दर वर्णन है, पाठकोंके लाभार्थ उसे यहाँ उद्‌धृत किया जाता है।

हरिः ॐ। द्वापरान्ते नारदो ब्रह्माणं जगाम कथं
भगवन् गां पर्यटन् कलिं सन्तरेयमिति॥ १॥

'द्वापरके समाप्त होनेके समय श्रीनारदजीने ब्रह्माजीके पास जाकर पूछा कि 'हे भगवन्! मैं पृथ्वीकी यात्रा करनेवाला कलियुगको कैसे पार करूँ'॥ १॥

स होवाच ब्रह्मा साधु पृष्टोऽस्मि सर्वश्रुतिरहस्यं गोप्यं तच्छृणु येन कलिसंसारं तरिष्यसि। भगवत आदिपुरुषस्य नारायणस्य नामोच्चारण-मात्रेण निर्धूतकलिर्भवति॥ २॥

'ब्रह्माजी बोले कि तुमने बड़ा उत्तम प्रश्न किया है। सम्पूर्ण श्रुतियोंका जो गूढ़ रहस्य है, जिससे कलिसंसारसे तर जाओगे, उसे सुनो। उस आदिपुरुष भगवान् नारायणके नामोच्चारणमात्रसे ही कलिके पातकोंसे मनुष्य मुक्त हो सकता है॥ २॥

नारदः पुनः पप्रच्छ। तन्नाम किमिति। स होवाच हिरण्यगर्भः।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

इति षोडशकं नाम्नां कलिकल्मषनाशनम्। नातः परतरोपायः सर्ववेदेषु दृश्यते॥ इति षोडशकलावृतस्य पुरुषस्य आवरणविनाशनम्। ततः प्रकाशते परं ब्रह्म मेघापाये रविरश्मिमण्डलीवेति॥ ३॥

'श्रीनारदजीने फिर पूछा कि 'वह भगवान्‌का नाम कौन-सा है?' ब्रह्माजीने कहा, वह नाम है—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥*

'इन सोलह नामोंके उच्चारण करनेसे कलिके सम्पूर्ण पातक नष्ट हो जाते हैं। सम्पूर्ण वेदोंमें इससे श्रेष्ठ और कोई उपाय नहीं देखनेमें आता। इन सोलह कलाओंसे युक्त पुरुषका आवरण (अज्ञानका परदा) नष्ट हो जाता है और मेघोंके नाश होनेसे जैसे सूर्य-किरण-समूह प्रकाशित होता है वैसे ही आवरणके नाशसे ब्रह्मका प्रकाश हो जाता है'॥ ३॥

पुनर्नारदः पप्रच्छ भगवन् कोऽस्य विधिरिति। तं होवाच नास्य विधिरिति। सर्वदा शुचिरशुचिर्वा पठन् ब्राह्मणः सलोकतां समीपतां सरूपतां सायुज्यतामेति॥ ४॥

नारदजीने फिर पूछा कि 'हे भगवन्! इसकी क्या विधि है?' ब्रह्माजीने कहा कि 'कोई विधि नहीं है। सर्वदा शुद्ध या अशुद्ध नामोच्चारणमात्रसे ही सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य मुक्ति मिल जाती है'॥ ४॥

---

* 'इस मन्त्रमें भगवान्‌के तीन नाम हैं हरि, राम और कृष्ण।' इनमें हरि शब्दका अर्थ है—'हरति योगिचेतांसीति हरिः' जो योगियोंके चित्तोंको हरण करता है वह हरि है। अथवा 'हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः। अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः॥' जैसे अनिच्छासे स्पर्श कर लेनेपर भी अग्नि जला देती है, इसी प्रकार दुष्टचित्तसे भी स्मरण किया हुआ जो हरि पापोंको हर लेता है उसे हरि कहते हैं। 'राम' शब्दका अर्थ है—'रमन्ते योगिनोऽस्मिन्निति रामः' जिसमें योगिगण रमण करते हैं, उसका नाम राम है, अथवा 'रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि। इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते॥' जिस अनन्त चिदात्मा परब्रह्ममें योगिगण रमण करते हैं वह है राम। 'कृष्ण' शब्दका अर्थ है 'कर्षति योगिनां मनांसीति कृष्णः' जो योगियोंके चित्तको आकर्षण करता है वह कृष्ण है। अथवा 'कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृत्तवाचकः। तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते।' कृषि भू याने सत्तावाचक है और ण निर्वृत्तिवाचक है, इन दोनोंकी एकता होनेपर परब्रह्म कृष्ण कहलाता है।

यदास्य षोडशकस्य सार्धत्रिकोटिर्जपति तदा ब्रह्महत्यां तरति। स्वर्णस्तेयात् पूतो भवति। वृषलीगमनात् पूतो भवति। सर्वधर्मपरित्यागपापात्सद्यः शुचितामाप्नुयात्। सद्यो मुच्यते सद्यो मुच्यते इत्युपनिषत्॥ ५ ॥

'ब्रह्माजी फिर कहने लगे कि 'यदि कोई पुरुष इन सोलह नामोंके साढ़े तीन करोड़ जप कर ले तो वह ब्रह्महत्या, स्वर्णकी चोरी, शूद्र-स्त्री-गमन और सर्वधर्मत्यागरूपी पापोंसे मुक्त हो जाता है। वह तत्काल ही मुक्तिको प्राप्त होता है' ॥ ५ ॥

जपकी विधि

इससे यह सिद्ध हो गया कि स्त्री-पुरुष, ब्राह्मण-अन्त्यज, गृही-वनवासी, शुद्ध-अशुद्ध, विद्वान्-मूर्ख कोई भी किसी भी प्रकारसे इस षोडश नामके साढ़े तीन करोड़ मन्त्रोंका जप कर लेता है वह समस्त महापातकों, उनके फलस्वरूप नरकों और स्वर्गादि मोक्षमार्गके प्रतिबन्धकोंसे छूटकर परमात्माके सच्चिदानन्दघन-स्वरूपको अनायास ही प्राप्त हो जाता है, कितना सहज और सस्ता उपाय है ? यदि मनुष्य प्रतिदिन लगभग ६,५०० मन्त्रोंका जप करे (जो सोलह नामके मन्त्रकी लगभग ६१ मालाओंमें हो जाता है) तो केवल १५ वर्षमें साढ़े तीन कोटि जप-संख्या पूरी हो जाती है। यह तो साधारण जप-विधिकी बात है। उपांशु या मनसे जप हो तो बहुत ही शीघ्र सफलता मिल सकती है।

जिस परमात्माको प्राप्त करनेके लिये लाखों-करोड़ों जन्मोंतक प्रतीक्षा करनी पड़ती है, जिस परमात्मसुखको पानेके लिये अनन्त जन्मोंकी साधनाकी आवश्यकता होती है, वही परमात्माकी प्राप्तिरूप सिद्धि यदि पंद्रह वर्षोंमें घरमें रहते हुए, संसारका काम करते हुए, शास्त्रसे अविरुद्ध भोगोंको भोगते हुए मिल जाय तो फिर और क्या चाहिये ? इससे सस्ता सौदा और क्या हो सकता है ? हम सारी उम्र बिता देते हैं थोड़ेसे धन-संग्रह करनेके

लोभमें ! जिसका संग्रह होना-न-होना भी अनिश्चित रहता है। परंतु समस्त धनोंका मूल, समग्र धनपतियोंका एकमात्र स्वामी, समस्त देव, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, पितृ, मनुष्य और राक्षस आदिके कुल धनकी, जिस अतुल धनराशिके एक अंशके कोट्यंशके साथ भी तुलना नहीं की जा सकती। ऐसा वह परमधन स्वयं यदि पंद्रह वर्षकी श्रद्धायुक्त सहज साधनासे अपने अस्तित्वके साथ तुम्हारे अस्तित्वको मिला लेता है तो बताओ फिर तुम्हें और किस वस्तुकी आवश्यकता रह जाती है ? जब स्वयं सम्राट्का ही पद मिल जाय, तब छोटे-छोटे खेत तो उसमें आप ही आ जाते हैं। तुम संसारका मामूली धन चाहते हो। वह सारे खजानेका स्वामित्व ही तुम्हें सौंप देता है। फिर मामूली धनकी प्राप्तिके लिये तो कोई गारंटी भी नहीं करता। सब समझदार लोग यों ही कहते हैं भाई ! उद्योग करो, तुम्हारे भाग्यमें होगा तो मिल जायगा, परन्तु इस परमधनकी प्राप्तिके लिये तो शास्त्र जिम्मा लेते हैं। ब्रह्मा स्वयं कहते हैं। इतिहास इस बातकी सत्यताका प्रमाण दे रहे हैं। भक्तोंकी गाथाएँ उच्च स्वरसे इस ध्रुव सत्यकी घोषणा कर रही हैं। इसके प्रत्यक्ष उदाहरण भी मिल सकते हैं। ऐसी स्थितिमें अविश्वासकी तो कोई बात ही नहीं रह जाती।

लोग कह सकते हैं कि 'हम घरका काम करते हुए प्रतिदिन इतने मन्त्रोंका जप कैसे करें ? इतने जपमें कम-से-कम छः घंटेका समय चाहिये।' परंतु उनका ऐसा कहना भूलसे होता है, यदि हमलोग समयका उपयोग सावधानीके साथ करें तो घर और आजीविकाके काममें किसी प्रकारकी बाधा नहीं पड़कर भी इतना जप प्रतिदिन हो सकता है। उस देवमन्त्रके जपमें बाधा आती है। जो स्नानकर शुद्ध हो एक समय एक जगह बैठकर किया जाता है। वैसे जपमें लगातार इतना समय लगाना कठिन होता है, परंतु इस नाम-मन्त्रके जपमें तो उस तरहकी कोई अड़चन नहीं है। चलते, फिरते, बैठते, उठते, सोते, आजीविकाका काम करते—सब समय,

सभी अवस्थामें यह जप हो सकता है। यदि हमलोग हिसाब लगाकर देखें तो दिन-रातके चौबीस घंटेके समयमें छः घंटे निद्राके बाद देकर बाकीके अठारह घंटे केवल शरीर और आजीविकाके कार्योंमें ही नहीं व्यतीत होते। हमारा बहुत-सा समय तो असावधानीसे व्यर्थकी बातोंमें जाता है। यदि हमलोग वाणीका संयम करना सीख जायँ, बिना मतलब, बिना कार्यके बोलना छोड़ दें तो मेरी समझसे राजासे लेकर मजदूरतक सबको इतना नाम-जप प्रतिदिन करनेके लिये पूरा समय अनायास ही मिल सकता है। हम चेष्टा नहीं करते, केवल बहाना कर देते हैं। यदि चेष्टा करें, समयका मूल्य समझें तो एक क्षणको भी हरिके नाम बिना व्यर्थ नहीं जाने दें। कामके लिये जितने बोलनेकी आवश्यकता हुई, उतने शब्द बोल दिये, फिर बाणीको उसी नाम-जपमें लगा दिया। इस प्रकार अभ्यास करते रहनेपर तो ऐसी आदत पड़ जाती है कि फिर नाम-जप छूटना कठिन हो जाता है, फिर तो साधकको ऐसी प्रबल इच्छा होने लगती है कि चौबीसों घंटे नाम-जप ही किया करूँ। उसे थोड़े जपमें सन्तोष नहीं होता। जैसे बड़े जोरकी भूख या प्यास लगनेपर मनुष्यका एक-एक क्षण कष्टसे बीतता है, इसी प्रकार नामप्रेमीका भी जो क्षण नामके बिना जाता है, वह बड़े कष्टसे बीतता है।

जप उसीका नाम है जो संख्यासे किया जाता है। जपके तीन प्रकार पहले बतलाये जा चुके हैं। उनके सिवा साधकोंके सुभीतेके लिये और भी कई प्रकार बतलाये जाते हैं। जैसे—

(१) श्वासके द्वारा जप करना।

(२) नाड़ीसे जप करना।

(३) मानस-मूर्ति-पूजाकी भाँति नामाक्षरोंकी मनमें कल्पना कर उनको बारम्बार पढ़ना।

(४) भगवान्‌की मूर्तिकी कल्पना कर उसपर नामाक्षरोंकी गहनोंकी तरह कल्पना कर उनकी आवृत्ति करना।

अन्य भी कई प्रकार तथा भेद हैं, विस्तारभयसे यहाँ नहीं लिखे जाते। उपर्युक्त चारों प्रकारके जपका कुछ खुलासा कर देना आवश्यक है।

(१) प्रत्येक श्वासकी गतिकी ओर लक्ष्य रखना और श्वासके आने तथा जानेमें श्वासके शब्दके साथ ही मन्त्रकी कल्पना करना, साथ ही जिह्वासे भी उपांशुरूपसे उच्चारण करते रहना। आरम्भमें माला रखना और श्वासके साथ होनेवाले प्रत्येक जपकी गिनती रखना। यदि इस प्रकार दो-चार मालाएँ भी प्रतिदिन जपनेका अभ्यास किया जाय तो मन बहुत शीघ्र स्थिर होकर नाममें लग सकता है। श्वासका जप बिना मनके नहीं होता। साधारण और उपांशु-जप तो अभ्यास होनेपर मनके अन्यत्र रहनेपर भी हो सकते हैं, परंतु श्वासका जप मन बिना नहीं होता, मन नहीं रहता है तो श्वासकी गतिका ध्यान छूट जाता है, केवल जीभसे जप होता रहता है। इसलिये श्वाससे जप करनेवालेको श्वासकी गतिकी ओर ध्यान रखना ही पड़ता है। जहाँ मन अन्यत्र गया कि जप छूटा। कबीरने कहा है—

साँसौ साँसा नाम जप, अरु उपाय कछु नाहिं।

(२) इसी प्रकार नाड़ीका जप है। नाड़ीकी गति श्वाससे भी सूक्ष्म है। हाथ, गले, मस्तक आदिकी नाड़ियाँ अँगुली लगानेपर चलती हुई मालूम होती हैं, अतएव पहले-पहले नाड़ीद्वारा जप करनेवालेको अँगुलियोंसे नाड़ीकी गतिका निरीक्षण करते हुए मनको उस गतिकी ओर लगाकर नाड़ीकी गतिके साथ ही उसके प्रत्येक ठपकेपर मन्त्रकी कल्पना करनी चाहिये। जीभ और मालाका प्रयोग श्वाससे जपके समान ही करना चाहिये।

(३) आँखें मूँदकर मन्त्रके पूरे अक्षरोंकी अपने सामने आकाशमें या हृदयमें कल्पना कर उन्हें बारम्बार मनसे पढ़ता रहे, साथ ही जीभका प्रयोग भी करता रहे। गिनतीके लिये हाथमें माला रखे। मन्त्रके अक्षर, हो सके तो बराबर मनमें बनाये रखे या प्रत्येक मन्त्रके जपका आरम्भ करनेके समय कल्पना कर ले और मन्त्र पूरा होते ही मिटा दे। जिस तरीकेमें सुभीता मालूम हो वही करे।

(४) मनकी रुचिके अनुसार भगवान्‌की किसी मूर्तिकी मनमें कल्पना कर मूर्तिके चरणोंमें या गलेकी मालामें या मस्तकमें, मुकुटमें या हस्त-पादादि अङ्गोंपर जड़े हुए नगीनोंके गहनोंके रूपमें मन्त्रके चमकते हुए सुन्दर अक्षरोंकी कल्पना कर आँखें मूँदे हुए उनका बारम्बार मनसे जप करता रहे और सब बातें तीसरेके समान ही करे।

योगदर्शनकार कहते हैं—'**तज्जपस्तदर्थभावनम्**' उसके वाचक प्रणवका जप करता हुआ उसके वाच्य नामीकी—ईश्वरकी भावना करे। वाणीसे जप और मनमें ध्यान दोनोंका एक साथ होना बहुत ही उत्तम साधन है। भगवान्‌ने भी यही कहा है—

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥

(गीता ८।१३)

'जो इस ॐरूप एकाक्षर नाम-ब्रह्मका उच्चारण करता हुआ और नामी मुझ परमात्माको स्मरण करता हुआ शरीरको त्याग कर जाता है, वह पुरुष परमगतिको प्राप्त होता है।'

मनमें भगवान्‌की मूर्तिका, भगवद्भावका या भगवन्नामका ध्यान-स्मरण करते हुए जीभसे जप करना सर्वोत्तम जप है, इसीके अन्तर्गत उपर्युक्त चारों प्रकार भी हैं। इससे उतरकर उपांशु और उससे उतरकर साधारण (जोर-जोरसे उच्चारण करते हुए जप करना) है, जिसको जो सुलभ, सुविधाजनक और रुचिकर प्रतीत हो, वह उसीका अभ्यास करे। भगवन्नाम ऐसी वस्तु है जो किसी भी प्रकारसे ग्रहण करनेपर भी मङ्गलप्रद ही है। भगवन्नाम-जपमें रुचि और विश्वास होना चाहिये, फिर बेड़ा पार है। इतना स्मरण रखना चाहिये कि जो जप निष्कामभावसे, नामीके ध्यानसे युक्त, प्रेमसहित, निरन्तर और गुप्त होता है वही उत्तम-से-उत्तम समझा जाता है। अतएव यथासाध्य कुछ मालाएँ (कम-से-कम १४ मालाएँ) प्रतिदिन जपनी चाहिये। नियमसे जो काम होता है वह अनियमसे नहीं होता।

यदि निष्कामभाव न आ सके तो विश्वास रखकर सकामभावसे ही जप करना चाहिये। भगवन्नाम-जपकी महिमासे आगे चलकर सकाम भी निष्काम हो सकता है। प्रातःस्मरणीय भक्तराज ध्रुवजीने राज्यकी इच्छासे वनमें जाकर ध्यानसहित मन्त्र-जप किया। उन्हें राज्य भी मिला और भगवान्‌का परमधाम भी। उन्हें सिद्धि भी बहुत शीघ्र मिली। थोड़ेसे ही समयमें काम बन गया, इतना सब क्यों हो गया? इसीलिये कि ध्रुव दृढ़ विश्वासी था। जिस समय मातासे उसे उपदेश मिला, उसी समय बालक ध्रुव घरसे निकल पड़ा। रास्तेमें भगवान् नारद मिले। उन्होंने सहजमें राज्य दिलवानेका लोभ और वनके भीषण कष्टोंका भय दिखलाकर ध्रुवकी परीक्षा की, जब उसे पक्का पाया तब नारदजीने दया कर उसे भगवन्नामका मन्त्र दे दिया। ध्रुव दृढ़ निश्चयके साथ तन-मनकी सारी सुधि भुलाकर मन्त्रका जप करने लगा। भगवद्भावसे उसके हृदयमें आनन्दका समुद्र उमड़ा। साक्षात् नारायणको उसके सामने मूर्तिमान् होकर प्रत्यक्ष दर्शन देना पड़ा। आज हमलोगोंको भगवद्दर्शनमें जो देरी हो रही है इसका कारण यही है कि हमें नामपर पूरा विश्वास नहीं है। जितने अंशमें विश्वास है उतने अंशमें सिद्धि भी होती ही है।

भक्तराज श्रीहरिदासजी बड़े जोर-जोरसे उच्चारण करके नाम-जप किया करते थे। तीन लाख नाम-जपका उनका नियम था। रामचन्द्रखाँकी भेजी हुई वेश्या उन्हें डिगाने आयी। परंतु तीन रात्रितक हरिदासजीके पवित्र मुखारविन्दसे निकली हुई परम पुनीत हरिध्वनिको सुनकर स्वयं पापपथसे डिग गयी और उसी क्षण दुराचार छोड़कर परम वैष्णवी बन गयी। तात्पर्य यह कि विश्वास और प्रेमके साथ नाम-जप होना चाहिये। किसी प्रकार हो। नामका फल अमोघ है।

संस्मरण

स्मरण जपके साथ भी रहता है और अलग भी। यों तो पहले स्मृति हुए बिना न जप होता है और न कीर्तन होता है, परंतु बीचमें स्मरण छूट

जानेपर भी जप और कीर्तन होते रहते हैं। जीभका अभ्यास हो जानेपर जप होता रहता है। ठीक मन्त्रोंके अनुसार ही मालाकी मणियोंपर भी हाथ चलता रहता है, परंतु स्मरण नहीं रहता। स्मृति मनकी वृत्ति है। वाणी अभ्यासवश एक काम करती है, मन उस समय किसी दूसरी स्मृतियोंमें रमता रहता है। इसीलिये भगवान्ने मनसहित वाणीके जपको उत्तम बतलाया। जिस जपमें नामीकी मूर्ति, उसके गुण, उसके भाव या नामकी स्मृति रहती है वह जप स्मरणयुक्त कहलाता है। जो जप केवल जिह्वासे होता है वह जप स्मरणरहित कहा जाता है। स्मरणरहितकी अपेक्षा स्मरणयुक्तका माहात्म्य अधिक है, क्योंकि उसमें मन-वाणी दोनों एक काम करते हैं। महात्मा पुरुषोंके वचन हैं कि जिसकी जबान और मन दोनों एक-से होते हैं वही सच्चा साधु है। स्मरणयुक्त जपमें जबान और मन दोनोंकी एकतानता हो जाती है। इसीलिये उसका फल इतना विशेष है; परंतु स्मरण ऐसा भी होता है जो केवल स्मरण ही कहलाता है, जप नहीं। जप वही होता है जिसकी संख्या होती है। स्मरणकी कोई संख्या नहीं होती। जहाँतक स्मरणका पूरा अभ्यास न हो वहाँतक तो स्मरणयुक्त जप ही करनेकी चेष्टा करनी चाहिये, परंतु जब स्मरणका पूरा अभ्यास हो जाय तब फिर जपकी कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। ऐसे अनन्य स्मरणकी विधि और उसका फल श्रीभगवान् बतलाते हैं—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(गीता ८। १४)

'जो पुरुष अनन्यचित्त होकर सदा-सर्वदा मुझे स्मरण करता है, उस मुझे निरन्तर स्मरण करनेवाले योगीके लिये मैं सुलभ हूँ।' चित्तमें दूसरे विषयको कभी स्थान न हो, प्रतिदिन और प्रतिक्षण उसीकी स्मृति बनी रहे। इस प्रकार नित्य लगे रहनेवालेके लिये भगवान् सहज (सस्ते) हो जाते हैं, परंतु इस स्मरणका रूप कैसा होता है? भक्तराज कबीरजी कहते हैं—

सुमिरनकी सुधि यों करो, जैसे कामी काम।
एक पलक न बीसरै, निस दिन आठों याम॥
सुमिरनकी सुधि यों करो, ज्यों सुरभी सुत माँहि।
कह कबीर चारो चरत, बिसरत कबहूँ नाँहि॥
सुमिरनकी सुधि यों करो, जैसे दाम कँगाल।
कह कबीर बिसरे नहीं, पल-पल लेत सम्हाल॥
सुमिरनसों मन लाइये, जैसे नाद कुरंग।
कह कबीर बिसरे नहीं, प्रान तजै तेहि संग॥
सुमिरनसों मन लाइये, जैसे दीप पतंग।
प्रान तजै छिन एकमें, जरत न मोड़े अंग॥
सुमिरनसों मन लाइये, जैसे कीट भिरंग।
कबीर बिसारे आपको, होय जाय तेहि रंग॥
सुमिरनसों मन लाइये, जैसे पानी मीन।
प्रान तजै पल बीछड़े, संत कबीर कह दीन॥

'जैसे कामी आठ पहरमें एक क्षणके लिये भी स्त्रीको नहीं भूलता, जैसे गौ वनमें घास चरती हुई भी बछड़ेको सदा याद रखती है, जैसे कंगाल अपने टेंटके पैसेको पल-पलमें सम्हाल करता है, जैसे हरिण प्राण दे देता है, परंतु वीणाके स्वरको नहीं भूलना चाहता, जैसे बिना संकोचके पतंग दीपशिखामें जल मरता है, परंतु उसके रूपको भूलता नहीं, जैसे कीड़ा अपने-आपको भुलाकर भ्रमरके स्मरणमें उसीके रंगका बन जाता है और जैसे मछली जलसे बिछुड़नेपर प्राण त्याग कर देती है, परंतु उसे भूलती नहीं।' गोसाईंजी महाराजने भी कहा है—

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम॥

स्मरणका यह स्वरूप है।

इस प्रकार जिनका मन उस परमात्माके नाम-चिन्तनमें रम जाता है, वे तृप्त, पूर्णकाम और अकाम हो जाते हैं। उन्हें किसी भी वस्तुकी इच्छा अवशेष नहीं रह जाती।

भगवान्‌ने कहा है—

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत्॥

(श्रीमद्भा० ११।१४।१४)

'जिसने अपना चित्त मुझमें अर्पित कर दिया है, वह मुझे छोड़कर ब्रह्माजीका पद, स्वर्गका राज्य, समस्त भूमण्डलका चक्रवर्तित्व, पातालादि देशोंका आधिपत्य, अणिमादि योगकी सिद्धियाँ तथा मोक्ष, कुछ भी नहीं चाहता।'

यहाँपर कोई कह सकते हैं कि यह तो नामीके स्मरणकी कथा है। यहाँ नामकी कौन-सी बात है? इसका उत्तर यह है कि नामसे ही नामीका पता लगता है, हम यदि अपने पिताके स्वरूपका स्मरण करते हैं तो 'पिता' इस सम्बन्धनामका स्मरण पहले होता है, नाम बिना नामीकी कल्पना ही नहीं हो सकती। नाम ही नामीका परिचय कराता है। गोसाईंजीने बहुत ही सुन्दर कहा है—

देखिअहिं रूप नाम आधीना। रूप ग्यान नहिं नाम बिहीना॥
रूप बिसेष नाम बिनु जानें। करतल गत न परहिं पहिचानें॥

रूप नामके अधीन ही देखा जाता है। किसीके हाथमें हीरा है; परंतु जबतक उस हीरेको वह हीरा नहीं समझता तबतक उसे रूपका ज्ञान नहीं होता। रूपका ज्ञान हुए बिना वह उसका मूल्य नहीं जानता। जब किसी जौहरीसे उसका नाम 'हीरा' जान लेता है तभी उसे उसकी बहुमूल्यताका

ज्ञान होता है। इससे यह सिद्ध हो गया कि नामका स्मरण हुए बिना नामीका ज्ञान नहीं होता। नामका कुछ दिनोंतक स्मरण करनेपर, साधकके अन्तरमें जो एक आनन्दका सरोवर बँधा पड़ा है उसका बाँध टूट जाता है, वह सुखकी प्रबल धारामें बह जाता है। उस समय उस राम-रसके सामने उसे सब रस फीके मालूम होने लगते हैं। वह जोरसे पुकार उठता है—

पायो नाम चारु चिन्तामनि उर करतें न खसैहौं।

नामकी सुन्दर चिन्तामणि मुझे मिल गयी। अब मैं इसे हृदय और हाथोंसे कभी न जाने दूँगा। वह ऐसा क्यों कहता है? इसीलिये कि उसे इसमें वह सुख मिलता है जो बड़े-बड़े विषयी सम्राटोंको भी नसीब नहीं होता। भगवान् कहते हैं कि—

मय्यर्पितात्मनः सभ्य निरपेक्षस्य सर्वतः।
मयाऽऽत्मना सुखं यत्तत् कुतः स्याद् विषयात्मनाम्॥

(श्रीमद्भा० ११।१४।१२)

'मुझमें चित्त लगानेवाला और समस्त विषयोंकी अपेक्षा छोड़नेवाले भक्तको मुझसे जो परम सुख मिलता है, वह सुख विषयासक्तचित्त लोगोंको कहाँसे मिल सकता है?'

मन जितना ही विषयोंका चिन्तन करता है उतना ही संसारमें बँधता है; क्योंकि विषय-चिन्तनसे ही क्रमशः सङ्ग, काम, क्रोध, मोह, स्मृतिभ्रंश, बुद्धिनाश और अन्तमें सर्वनाश होता है। मनमें पहले-पहले जब स्फुरणा उठती है तो वह तरंगके सदृश होती है, परंतु वही आगे जाकर समुद्र बन जाती है। इसलिये अपना कल्याण चाहनेवाले लोगोंको चाहिये कि वे मनमें विषयोंके बदले धीरे-धीरे भगवान्‌को स्थान दें। उपर्युक्त युक्तियोंके द्वारा नाम-स्मरण करें। एक दृढ़ अभ्यासका नाश करनेके लिये उसके विरोधी दूसरे अभ्यासकी ही आवश्यकता होती है। अनभ्यस्त विषयके चिन्तनमें पहले-पहले मन ऊबता, अकुलाता और झल्लाता है; परंतु दृढ़ताके साथ अभ्यास

करते रहनेपर अन्तमें वह तदाकार बन ही जाता है। इसलिये हठसे भी मनको परमात्माके नाम-स्मरणमें लगाना चाहिये। नियम कर लेना चाहिये कि मनसे इतने नाम-जप प्रतिदिन अवश्य करेंगे। कम-से-कम उतना जप तो प्रतिदिन हो ही जाना चाहिये। स्मरणसे ही मनमें प्रेमकी उत्पत्ति होती है। एक स्त्री अपने नैहरमें है, उसका पति वहाँ नहीं है। पतिका रूप उसके सामने नहीं है, परन्तु पतिका नाम-स्मरण होते ही उसका मन प्रेमसे भर जाता है।

नाम-स्मरण करते-करते जब स्मरणकी बान पड़ जाती है तब तो मन कभी उसे छोड़ता ही नहीं। स्मरणसे क्या नहीं होता? यदि अन्तकालमें परमात्माके नामका स्मरण हो जाय तो उसके मोक्षमें जरा-सा भी सन्देह नहीं रह जाता। भगवान्ने अर्जुनसे कहा है कि—

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥

(गीता ८।५)

'जो पुरुष मृत्युकालमें मुझे स्मरण करता हुआ शरीर त्याग कर जाता है, वह मुझे ही प्राप्त होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं। परंतु अन्तकालमें परमात्माकी स्मृति किसे होती है जो **'सदा तद्भावभावितः'** होता है, अर्थात् सदा जिस भावका चिन्तन करता है, अन्तकालमें भी प्रायः उसीका स्मरण हुआ करता है। इसीलिये भगवान्ने अर्जुनसे कहा कि हे पार्थ!—

तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्॥

(गीता ८।७)

'तू सदा-सर्वदा मेरा स्मरण करता हुआ युद्ध कर, इस प्रकार मुझमें मन-बुद्धि अर्पित हो जानेसे तू निःसन्देह मुझे ही प्राप्त होगा।'

ब्राह्मण हो तो वेदाध्ययन करे, क्षत्रिय हो तो रणमें जाय, वैश्य हो तो व्यापार करे, शूद्र हो तो सेवा करे। सब अपना-अपना काम करें; परंतु करें

उसे याद रखते हुए। वैसे ही जैसे कि दुराचारिणी उप-पतिको, सती पतिको, कृपण धनको और विषयी विषयको निरन्तर याद रखता है। पनिहारी सिरपर दो घड़े उठाकर चलती है, रास्तेमें दूसरोंसे बात भी करती है, परंतु उसकी स्मृति रहती है सिरपर उठाये हुए उन दोनों घड़ोंमें। इस प्रकार क्षणमात्रके स्मरणसे ही बड़ा काम होता है। आजकल लोग माला फेरते हैं, हाथ रहता है गोमुखीमें परंतु मन डोला करता है विषयोंमें। मन्त्र-जपमें गौणता होती है और विषयोंमें मुख्यता, इसीसे जप करते-करते बीच-बीचमें वे बोल उठते हैं।

एक सेठजी जप कर रहे थे, माला हाथमें थी, मुँहसे भी मन्त्रका उच्चारण करते थे, परंतु उनका मन और ही अनेक बातोंके चिन्तनमें लगा हुआ था। पुत्र भी पास बैठा संध्या कर रहा था। सेठजी माला फेरते-फेरते ही बीचमें बोल उठे—'अरे ! कल सब ग्राहकोंके रुपये आ गये ? राम राम राम राम। देख ! तू बड़ा मूर्ख है, कहीं व्यापारमें भी सच्चाईसे कमाई होती है ? राम राम राम राम। हाथीके दाँत दिखानेके दूसरे और खानेके दूसरे होते हैं—राम राम राम राम। नहीं तो व्यापारमें रस-कस कैसे बैठे ? राम राम राम राम। माप-तौलमें जरा कस बैठना चाहिये—राम राम राम राम। मैं तो मर जाऊँगा फिर तेरा काम कैसे चलेगा ? राम राम राम राम।'

इस तरह राम-नाम करनेवाले ढोंगी लोगोंके कारण ही नामपर लोगोंकी रुचि घटती है। परन्तु नाम-प्रेमियोंको इस ओर ध्यान नहीं देना चाहिये। यदि कोई मूर्ख रत्नका दुरुपयोग भी करता है तो इस रत्नका रत्नपना और उसकी बहुमूल्यता थोड़े ही घट जाती है ? कहनेका तात्पर्य केवल इतना ही है कि स्मरण सच्चा होनेसे ही शीघ्र फलप्रद होता है।

स्मरणके बाद आता है—

कीर्तन

कीर्तन जोर-जोरसे होता है और इसमें संख्याका कोई हिसाब नहीं रखा जाता। यही जप और कीर्तनमें भेद है। जप जितना गुप्त होता है उतना ही

उसका अधिक महत्त्व है; परंतु कीर्तन जितना ही गगनभेदी स्वरमें होता है उतना ही उसका महत्त्व बढ़ता है। कीर्तनके साथ संगीतका सम्बन्ध है। कीर्तनमें पहले-पहले स्वरोंकी एकतानता करनी पड़ती है ! कीर्तनके कई प्रकार हैं—

(१) अकेले ही भगवान्‌के किसी नामको आर्तभावसे पुकार उठना। जैसे द्रौपदी और गजराज आदिने पुकारा था।

(२) अकेले ही भगवान्‌के गुणनाम, कर्मनाम, जन्मनाम और सम्बन्ध-नामोंका विस्तारपूर्वक या संक्षेपमें जोर-जोरसे उच्चारण करना।

(३) भगवान्‌के किसी चरित्र या भक्तचरित्रके किसी कथाभागका गान करना और बीच-बीचमें नाम-कीर्तन करना।

(४) कुछ लोगोंका एक साथ मिलकर प्रेमसे भगवन्नाम-गान करना।

(५) अधिक लोगोंका एक साथ मिलकर एक स्वरसे नाम-कीर्तन करना।

इसके सिवा और भी अनेक भेद हैं। जब मनुष्य किसी दुःखसे घबड़ाकर जगत्‌के सहायकोंसे निराश होकर भगवान्‌से आश्रय-याचना करता हुआ जोरसे उसका नाम लेकर पुकारता है तब भगवान् उसी समय भक्तकी इच्छाके अनुकूल स्वरूप धारणकर उसे दर्शन देते और उसका दुःख दूर करते हैं। श्रीभगवान्‌के रामावतार और कृष्णावतारमें असुरोंके द्वारा पीड़ित सुर-मुनियोंने मिलकर पहले आर्तस्वरसे कीर्तन ही किया था।

जिस समय एकवस्त्रा देवी द्रौपदी कौरवोंके दरबारमें केश पकड़कर लायी जाती है, दुर्योधन उसके वस्त्र-हरणके लिये अमित बलशाली दुःशासनको आज्ञा देता है, उस समय द्रौपदीको यह कल्पना ही नहीं होती कि इस बड़े-बूढ़े धर्मज्ञ विद्वान् और वीरोंकी सभामें ऐसा अन्याय होगा। परंतु जब दुःशासन सचमुच वस्त्र खींचने लगता है तब द्रौपदी घबड़ाकर राजा धृतराष्ट्र, पितामह भीष्म, गुरु द्रोणाचार्य आदि तथा अपने वीर पाँच पतियोंकी सहायता चाहती है। परंतु भिन्न-भिन्न कारणोंसे जब कोई भी उस

समय द्रौपदीको छुड़ानेके लिये तैयार नहीं होता तब वह सबसे निराश हो जाती है। सबसे निराश होनेके बाद ही भगवान्‌की अनन्य स्मृति हुआ करती है। दुःशासन बड़े जोरसे साड़ी खींचता है। एक झटका और लगते ही द्रौपदीकी लज्जा जा सकती है। द्रौपदीकी उस समयकी दीन-अवस्था हमलोगोंकी कल्पनामें भी पूरी नहीं आ सकती ! महलोंके अंदर रहनेवाली एक राजरानी, पृथ्वीके सबसे बड़े पाँच वीरोंद्वारा रक्षिता कुलरमणी रजस्वला-अवस्थामें बड़े-बूढ़े तथा वीर पतियोंके सामने नंगी की जाती हो, उस समय उसको कितनी मर्मवेदना होती है इस बातको वही जानती है। कवियोंकी कलम शायद कुछ कल्पना करे ! खैर, द्रौपदीने निराश होकर भगवान्‌का स्मरण किया और वह व्याकुल होकर पुकार उठी—

गोविन्द द्वारकावासिन् कृष्ण गोपीजनप्रिय।
कौरवैः परिभूतां मां किं न जानासि केशव॥
हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्तिनाशन॥
कौरवार्णवमग्नां मामुद्धरस्व जनार्दन।
कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वभावन॥
प्रपन्नां पाहि गोविन्द कुरुमध्येऽवसीदतीम्।

(महा० सभा० ६७। ४१—४४)

'हे द्वारकावासी गोविन्द ! हे गोपीजनप्रिय कृष्ण ! क्या मुझ कौरवोंसे घिरी हुईको तू नहीं जानता ? हे नाथ, रमानाथ, व्रजनाथ, दुःखनाशक जनार्दन ! मुझ कौरवरूपी समुद्रमें डूबी हुईका उद्धार कर। हे विश्वात्मा विश्वभावन कृष्ण ! हे महायोगी कृष्ण ! कौरवोंके बीचमें हताश होकर तेरे शरण आनेवाली मुझको तू बचा।'

व्याकुलतापूर्ण नामकीर्तनका फल तत्काल होता है, जब सबकी आशा छोड़कर केवलमात्र परमात्मापर भरोसा कर उसे एक मनसे कोई पुकारता है तब वह करुणासिन्धु भगवान् एक क्षण भी निश्चिन्त और स्थिर नहीं रह सकता। उसे

भक्तके कामके लिये दौड़ना ही पड़ता है। नामकी पुकार होते ही द्रौपदीके वस्त्रोंमें भगवान् आ घुसे, वस्त्रावतार हो गया। वस्त्रका ढेर लग गया। दस हजार हाथियोंका बल रखनेवाले वीर दुःशासनकी भुजाएँ फटने लगीं—

'दस हजार गज बल घट्यो, घट्यो न दस गज चीर।'

भक्त सूरदास कहते हैं—

दुःशासनकी भुजा थकित भइ बसन रूप भये स्याम।

साड़ीका छोर न आया ! एक कवि कहते हैं—

पाय अनुसासन दुसासन कै कोप धायो,
द्रुपदसुताको चीर गहे भीर भारी है।
भीषम, करन, द्रोन बैठे व्रतधारी तहाँ,
कामिनीकी ओर काहू नेक ना निहारी है॥
सुनिकै पुकार धाये द्वारकाते जदुराई,
बाढ़त दुकूल खैंचे भुजबल भारी है।
सारी बीच नारी है कि नारी बीच सारी है कि
सारी ही कि नारी है कि नारी ही कि सारी है॥

दुःशासन थककर मुँह नीचा करके बैठ गया, द्रौपदीकी लाज और उसका मान रह गया। भगवन्नाम-कीर्तनका फल प्रत्यक्ष हो गया।

जय भगवान्‌के पावन नामकी जय !

इसी प्रकार गजराजकी कथा प्रसिद्ध है। वहाँ भी इसी तरहकी व्याकुलतापूर्ण नामकी पुकार थी ! यदि आज भी कोई यों ही सच्चे मनसे व्याकुल होकर पुकारे तो यह निश्चय है कि उसके लोक-परलोक दोनोंकी सिद्धि निश्चितरूपेण हो सकती है। इस बातका कई लोगोंको कई तरहका प्रत्यक्ष अनुभव है। अतएव प्रातःकाल, सायंकाल, रातको सोते समय भगवन्नामका कीर्तन अवश्य करना चाहिये। जहाँतक हो सके कीर्तन निष्काम एवं केवल प्रेमभावसे ही करना उचित है।

यह तो व्यक्तिगत नाम-कीर्तनकी बात हुई। इसके बाद समुदायमें नाम-कीर्तनका तरीका बतलाया जाता है। महाराष्ट्र और गुजरात प्रान्तमें कीर्तनकारोंके अलग समुदाय हैं, जो हरिदास कहलाते हैं। ये लोग समय-समयपर मन्दिरों, धर्मसभाओं और उत्सवोंके अवसरपर बुलाये जाते हैं, इनका कीर्तन बड़ा सुन्दर होता है। भगवान्‌की किसी लीला-कथाको या भक्तोंके किसी चरित्रको लेकर यह लोग कीर्तन करते हैं। आरम्भमें किसी भक्तका कोई एक श्लोक या पद गाते हैं और उसीपर उनका सारा कीर्तन चलता है, अन्तमें उसी श्लोक या पदके साथ कीर्तन समाप्त किया जाता है। आरम्भमें, अन्तमें और बीच-बीचमें हरिनामकी धुन लगायी जाती है, जिसमें श्रोतागण भी साथ देते हैं! ये लोग गाना-बजाना भी जानते हैं और कम-से-कम हार्मोनियम तथा तबलोंके साथ इनका कीर्तन होता है। बीच-बीचमें सुन्दर पद भी गाते हैं। इसमें दोष यही है कि इस प्रकारके अधिकांश कीर्तनकारोंका ध्यान भगवन्नामकी अपेक्षा सुर-अलापकी तरफ अधिक रहता है। गुजरातमें विवाहके अवसरपर एक दिन हरिकीर्तन करानेकी प्रथा है जो बड़ी सुन्दर मालूम होती है। अन्य अनेक प्रमादोंमें धनका नाश किया जाता है, वहाँ यदि इस प्रथाका प्रचार किया जाय तो लोगोंके मनोरंजनके साथ-ही-साथ बड़ा पारमार्थिक लाभ भी हो सकता है। यह भी एक तरहका सङ्घ-कीर्तन है।

इसके बाद वह कीर्तन आता है जो सर्वश्रेष्ठ है। जिसका इस युगमें विशेष प्रचार महाप्रभु श्रीश्रीगौराङ्गदेवजीकी कृपासे हुआ। इस कीर्तनका प्रकार यह है—बहुत-से लोग एक स्थानपर एकत्रित होते हैं। एक आदमी एक बार पहले बोलता है, उसके पीछे-पीछे और सब बोलते हैं, पर आगे चलकर सभी एक साथ बोलने लगते हैं। किसी एक नामकी धुनको सब एक स्वरसे बोलते हैं। ढोल, करताल, झाँझ और तालियाँ बजाते हुए गला खोलकर, लज्जा छोड़कर बोलते हैं। जब धुन जम जाती है तब स्वरका

ध्यान आप ही छूट जाता है। कीर्तन करनेवाला दल धुनमें मस्त हो जाता है। फिर कीर्तनकी मस्तीमें नृत्य आरम्भ होता है। रग-रग नाचने लगती है, आँखोंसे अश्रुओंकी धारा बहने लगती है, शरीरज्ञान नष्ट हो जाता है। नवद्वीप, वृन्दावन, अयोध्या और पण्ढरपुरमें ऐसे कीर्तन बहुत हुआ करते हैं। यह कीर्तन किसी एक स्थानमें भी होता है और घूमते हुए भी होता है। लेखकका विश्वास है कि ऐसे प्रेमभरे कीर्तनमें कीर्तनके नायक भगवान् स्वयं उपस्थित रहते हैं। उनका यह प्रण है—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

(आदिपु० १९।३५)

'मैं वैकुण्ठमें या योगियोंके हृदयमें नहीं रमता। मेरे भक्त जहाँ मिलकर मेरा गान करते हैं मैं वहीं जाता हूँ।'

इस प्रकारके कीर्तनमें प्रेमका सागर उमड़ता है, जो जगत्भरको पावन कर देता है। इस कीर्तनमें ब्राह्मण-चाण्डाल सभी शामिल हो सकते हैं। जिसको प्रेम उपजा, वही सम्मिलित हो गया, कोई रुकावट नहीं। ***'जाति-पाँति पूछै नहिं कोई। हरिको भजै सो हरि का होई॥'*** वही बड़ा है, वही श्रेष्ठ है जो प्रेमसे नाम-कीर्तनमें मतवाला होकर स्वयं पावन होता है और दूसरोंको पावन करता है। इस कीर्तनसे एक बड़ा लाभ और होता है। हरिनामकी तुमुल ध्वनि पापी, पतित, पशु-पक्षीतकके कानोंमें जाकर सबको पवित्र और पाप-मुक्त करती है। जिसके श्रवण-रन्ध्रसे भगवन्नाम उसके हृदयके अंदर चला जाता है उसीके पाप-मलको वह धो डालता है।

वामनपुराणका वचन है—

नारायणो नाम नरो नराणां
प्रसिद्धचौरः कथितः पृथिव्याम्।
अनेकजन्मार्जितपापसञ्चयं
हरत्यशेषं श्रुतमात्र एव॥

'पृथ्वीमें नारायण-नामरूपी नर प्रसिद्ध चोर कहा जाता है, क्योंकि वह कानोंमें प्रवेश करते ही मनुष्योंके अनेक जन्मार्जित पापोंके सारे सञ्चयको एकदम चुरा लेता है।'

जिस हरि-नाम-कीर्तनका ऐसा प्रताप है, जो पुरुष जीभ पाकर भी उसका कीर्तन नहीं करते वे निश्चय ही मन्दभागी हैं—

जिह्वां लब्ध्वापि यो विष्णुं कीर्तनीयं न कीर्तयेत्।
लब्ध्वापि मोक्षनिःश्रेणीं स नारोहति दुर्मतिः॥

'जो जिह्वाको पाकर भी कीर्तनीय भगवन्नामका कीर्तन नहीं करते, वे दुर्मति मोक्षकी सीढ़ियोंको पाकर भी उनपर चढ़नेसे वञ्चित रह जाते हैं।'

कुछ लोग कहा करते हैं कि हमें जोर-जोरसे भगवन्नाम लेनेमें संकोच होता है। मैंने ऐसे बहुत-से अच्छे-अच्छे लोगोंको देखा है कि जिन्हें पाँच आदमियोंके सामने या रास्तेमें हरिनामकी पुकार करनेमें लज्जा आती है। झूठ बोलनेमें, कठोर वाणीके प्रयोगमें, परनिन्दा-परचर्चामें, अनाचार-व्यभिचारकी बातें करनेमें लज्जा नहीं आती, परंतु भगवन्नाममें लज्जा आती है! यह बड़ा ही दुर्भाग्य है! यदि भगवन्नामसे सभ्यतामें बट्टा लगता हो तो ऐसी विषमयी शुष्क सभ्यताको दूरसे ही नमस्कार करना चाहिये! धन्य वही है जिसके भगवन्नामके कीर्तनमात्रसे, श्रवण और स्मरणमात्रसे रोमाञ्च हो जाता है, नेत्रोंमें आँसू भर आते हैं, कण्ठ रुक जाता है। वास्तवमें वही पुरुष मनुष्य-नामके योग्य है। ऐसे पुरुष ही जगत्को पावन करते हैं। भगवान् कहते हैं—

वाग् गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं
रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च
मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति॥

(श्रीमद्भा० ११। १४। २४)

'जिसकी वाणी गद्गद हो जाती है, हृदय द्रवित हो जाता है, जो बारम्बार

ऊँचे स्वरसे नाम ले-लेकर मुझे पुकारता है, कभी रोता है, कभी हँसता है और कभी लज्जा छोड़कर नाचता है, ऊँचे स्वरसे मेरा गुणगान करता है, ऐसा भक्तिमान् पुरुष अपनेको पवित्र करे इसमें तो बात ही क्या है; परंतु वह अपने दर्शन और भाषणादिसे जगत्‌को पवित्र कर देता है।'

यही कारण था कि कीर्तनपरायण भक्तराज नारदजी और श्रीगौराङ्गदेव आदिके दर्शन और भाषण आदिसे ही अनेकों जीवोंका उद्धार हो गया।

महाप्रभुके कीर्तनको सुनकर वनमें रहनेवाले भीषण सिंह, भालू आदि हिंस्र पशु भी प्रेममें निमग्न होकर नामकीर्तन करते हुए नाचने लगे थे! भगवान् कहते हैं, हे अर्जुन!—

गीत्वा तु मम नामानि नर्तयेन्मम सन्निधौ।
इदं ब्रवीमि ते सत्यं क्रीतोऽहं तेन चार्जुन॥

(आदिपुराण)

'जो मेरे नामोंका गान करता हुआ मुझे अपने समीप मानकर मेरे सामने नाचता है, मैं सत्य कहता हूँ कि मैं उसके द्वारा खरीदा जाता हूँ।'

कीर्तनकी महिमा क्या कही जाय? जो कभी कीर्तन करता है उसी भाग्यवान्‌को इसके आनन्दका पता है। जिसको यह आनन्द प्राप्त करना हो वह स्वयं करके देख ले। वाणी इस आनन्दके रूपका वर्णन नहीं कर सकती; क्योंकि यह **'मूकास्वादनवत्'** गूँगेके गुड़के समान केवल अनुभवकी वस्तु है!

यहाँतक बहुत संक्षेपसे नाम, जप, स्मरण और कीर्तनसम्बन्धी कुछ बातें कही गयीं। साधकोंके सुभीतेके लिये यह भेद-कल्पना है। नहीं तो जप, स्मरण या कीर्तन सब एक ही वस्तु है। श्रीभगवान्‌के परम पावन नामका किसी तरहसे भी ग्रहण हो, वह कल्याणकारी है। नामके ही प्रतापसे प्रह्लादने जड़मेंसे चेतनरूप होकर भगवान्‌को अवतार लेनेके लिये बाध्य कर दिया। नामके प्रतापसे ही वह अग्नि, साँप आदिसे बच गया, जहर पीकर

भी नहीं मरा। नामके ही प्रतापसे मीराके लिये जहर हरि-चरणामृत हो गया। नामके ही प्रतापसे नारद, व्यास, शुकदेवादि जगत्-पूज्य हैं। नामके ही प्रतापसे ब्रह्माजी सृष्टि रचनेमें समर्थ हुए। नामके प्रतापसे ही पानीपर पत्थर तर गये। नामके ही प्रतापसे हनुमान्जी चार सौ योजनका सागर अल्पायाससे लाँघ गये। नामके ही प्रतापसे श्रीशंकर, रामानुज, वल्लभ, मध्व, निम्बार्क, चैतन्य आदि आचार्योंने भगवद्भावको प्राप्त किया और उसीके प्रतापसे आज उनके शिष्य और वंशज पूजित हो रहे हैं। नामकी महिमा कहाँतक कही जाय। शेष, महेश, गणेश, शारदा भी जिसका वर्णन नहीं कर सकते, उसका वर्णन मैं क्षुद्रमति क्या करूँ ? जो एक बार नामका मजा चख लेता है, वह पागल हो जाता है, उसके सारे पाप-ताप मिट जाते हैं। वह स्वयं मुक्त होकर दूसरोंके लिये मुक्तिका मार्ग प्रशस्त कर देता है। संतोंने इसीके बलसे जनताको मुक्तिकी राह बतलानेमें सफलता प्राप्त की थी। नाम ही जीवन है, नाम ही धन है, नाम ही परिवार है, नाम ही इज्जत है, नाम ही कीर्ति है, नाम ही स्वर्ग है, नाम ही अमृत है।

न नामसदृशं ज्ञानं न नामसदृशं व्रतम्।
न नामसदृशं ध्यानं न नामसदृशं फलम्॥
न नामसदृशस्त्यागो न नामसदृशः शमः।
न नामसदृशं पुण्यं न नामसदृशी गतिः॥
नामैव परमा मुक्तिर्नामैव परमा गतिः।
नामैव परमा शान्तिर्नामैव परमा स्थितिः॥
नामैव परमा भक्तिर्नामैव परमा मतिः।
नामैव परमा प्रीतिर्नामैव परमा स्मृतिः॥
नामैव कारणं जन्तोर्नामैव प्रभुरेव च।
नामैव परमाराध्यो नामैव परमो गुरुः॥

(आदिपुराण)

'नामके समान न ज्ञान है, न व्रत है, न ध्यान है, न फल है, न दान है, न शम है, न पुण्य है और न कोई आश्रय है। नाम ही परम मुक्ति है, नाम ही परम गति है, नाम ही परम शान्ति है, नाम ही परम निष्ठा है, नाम ही परम भक्ति है, नाम ही परम बुद्धि है, नाम ही परम प्रीति है, नाम ही परम स्मृति है, नाम ही जीवका कारण है, नाम ही प्रभु है, नाम ही परम आराध्य है और नाम ही परम गुरु है।' भगवान् कहते हैं, हे अर्जुन !—

नामयुक्ताञ्जनान्दृष्ट्वा स्निग्धो भवति यो नरः।
स याति परमं स्थानं विष्णुना सह मोदते॥
तस्मान्नामानि कौन्तेय भजस्व दृढमानसः।
नामयुक्तः प्रियोऽस्माकं नामयुक्तो भवार्जुन॥

(आदिपुराण)

'नामयुक्त पुरुषोंको देखकर जो मनुष्य प्रसन्न होता है वह परम धामको प्राप्त होकर मुझ विष्णुके साथ आनन्द करता है। अतएव हे कौन्तेय ! दृढ़ चित्तसे नाम-भजन करो। नामयुक्त व्यक्ति मुझे बड़ा प्रिय है। हे अर्जुन ! तुम नामयुक्त होओ।'

यदि भारतीय हिंदू-जातिमें कभी एकता हो सकती है, यदि जगत्का सारा आस्तिकसमाज कभी प्रेमके एक सूत्रमें बँध सकता है, यदि कभी जगत्में विश्वप्रेमका पूरा प्रसार हो सकता है तो मेरी समझसे वह भगवन्नामसे ही सम्भव है। आज भगवान्को भूलकर लोग कार्य करते हैं, इसीलिये तो उन्हें सफलता नहीं मिलती। मैं तो सबसे यही प्रार्थना करता हूँ कि वैर-विरोध, हिंसा-मत्सर, काम-क्रोध, असत्य-स्तेयका यथासाध्य परित्यागकर, सब श्रीभगवन्नामके साधनमें लग जायँ। मेरी समझसे इसीसे लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त हो सकती हैं (१) नामप्रेमियोंका संग, (२) प्रतिदिन नाम-जपका कुछ नियम, (३) भोगोंमें वैराग्यकी भावना और (४) संतोंके जीवन-चरित्रका अध्ययन—ये नामसाधनमें बड़े

सहायक होते हैं। इन चारोंकी सहायतासे नाम-साधनमें सभीको लगना चाहिये। मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है कि नामसे असम्भव भी सम्भव हो सकता है और इसके साधनमें किसीके लिये कोई रुकावट नहीं है। ऊँचे वर्णका हो, नीचेका हो, पण्डित हो, मूर्ख हो सभी इसके अधिकारी हैं। बल्कि ऊँचा वही है, बड़ा वही है जो भगवन्नामपरायण है, जिसके मुख और मनसे निरन्तर विशुद्ध प्रेमपूर्वक श्रीभगवन्नामकी ध्वनि निकलती है।

गोसाईंजी महाराज कहते हैं—

धन्य धन्य माता पिता, धन्य पुत्रवर सोइ।
तुलसी जो रामहि भजें, जैसेहु कैसेहु होइ॥
तुलसी जाके बदन ते, धोखेहु निकसत राम।
ताके पगकी पगतरी, मोरे तनुको चाम॥
तुलसी भक्त श्वपच भलौ, भजै रैन दिन राम।
ऊँचो कुल केहि कामको, जहाँ न हरिको नाम॥
अति ऊँचे भूधरनपर, भुजगनके अस्थान।
तुलसी अति नीचे सुखद, ऊख अन्न अरु पान॥

सब मिलकर बोलो—श्रीभगवन्नामकी जय!

श्रीभगवन्नाम-महिमा

१-जिस प्रकार अग्निमें दाहिकाशक्ति स्वाभाविक है, उसी प्रकार भगवन्नाममें पापको—विषय-प्रपञ्चमय जगत्के मोहको जला डालनेकी शक्ति स्वाभाविक है। इसमें भावकी आवश्यकता नहीं है।

२-किसी प्रकार भी नाम जीभपर आना चाहिये, फिर नामका जो स्वाभाविक फल है, वह बिना श्रद्धाके भी मिल ही जायगा।

३-तर्कशील बुद्धि भ्रान्त धारणा करवा देती है कि बिना भावके क्या लाभ होगा। पर समझ लो ऐसा सोचना अपने हाथों अपने गलेपर छुरी चलाना है।

४-भाव हो या नहीं, हमें आवश्यकता है नाम लेनेकी। नामकी आवश्यकता है, भावकी नहीं।

५-भाव हो तो बहुत ठीक, परंतु हमें भावकी ओर दृष्टि नहीं डालनी है। भाव न हो, तब भी नाम-जप तो करना ही है।

६-देखो—नाम भगवत्स्वरूप ही है। नाम अपनी शक्तिसे, नाम अपने वस्तुगुणसे सारा काम कर देगा। विशेषकर कलियुगमें तो भगवन्नामके सिवा और कोई साधन ही नहीं है।

७-मनोनिग्रह बड़ा कठिन है—चित्तकी शान्तिके लिये प्रयास करना बड़ा ही कठिन है। पर भगवन्नाम तो इसके लिये भी सहज साधन है। बस, भगवन्नामकी जोरसे ध्वनि करो।

८-तर्क भ्रान्ति लाती है कि रोटी-रोटी करनेसे पेट थोड़े ही भरता है ? पर विश्वास करो, भगवन्नाम रोटीकी तरह जड शब्द नहीं है। यह शब्द ही ब्रह्म है। नाम और नामीमें कोई अन्तर ही नहीं है।

९-आलस्य और तर्क—ये दो नाम-जपमें बाधक हैं।

१०-प्रायः आलस्यके कारण ही कह बैठते हो कि नाम-जप होता नहीं।

११-अभ्यास बना लो, नाम लेनेकी आदत डालो।

१२-*'नाम लेत भव सिंधु सुखाहीं'* इसपर श्रद्धा करो। इस विश्वासको दृढ़ करो।

१३-कंजूसकी भाँति नामको सँभालो।

१४-निश्चय समझो नामके बलसे बिना ही परिश्रम भव-सागरसे तर जाओगे और भगवान्के प्रेमको भी प्राप्त कर लोगे।

१५-निरन्तर भगवान्का नाम लो, कीर्तन करो। मेरे विचारसे सर्वोत्तम साधन यही है।

१६-*'हारेको हरिनाम'*—इसी उपायसे सबका मङ्गल दीखता है और अन्य उपायोंमें राग-द्वेष उत्पन्न होकर फँस जानेका भय है।

१७-भगवान्पर विश्वास हो, उनकी कृपाका भरोसा हो और नाम-जप होता रहे तो अपने-आप ही निर्भयता आयेगी, साहस आयेगा। विपत्तिका टलना भी इसी उपायसे होगा।

१८-मनुष्य जब सब उपायोंसे हार जाता है, तब उसे हरिनाम सूझता है। तभी वह हरिनामको पकड़ता है और तभी उसे विजय मिलती है।

१९-बस, दो बात है—भगवान्की कृपापर विश्वास और भगवान्के नामका आश्रय। फिर कोई चिन्ता नहीं। ध्यान नहीं लगता न सही, मन वशमें नहीं होता न सही।

२०-भगवान् पापी और नीचके भी उद्धारक हैं, यह विश्वास करके केवल जीभसे भगवान्के नामका उच्चारण करते रहो।

२१-**सकल अंग पद बिमुख नाथ मुख नामकी ओट लई है।**
है तुलसी परतीति एक प्रभु मूरति कृपामई है॥

—बस, विश्वास कर लो कि *'प्रभु मूरति कृपामई है।'* और जीभसे नामका उच्चारण करते रहो।

२२-यदि हम जीभसे भगवन्नाम लेंगे तो सभी अङ्ग पुष्ट हो जायँगे।

२३-अन्तरके मलको नाश करनेके लिये भगवन्नामसे बढ़कर दूसरा सुलभ साधन है ही नहीं। स्त्री, बच्चे, बूढ़े सभी भगवान्‌का नाम बड़े प्रेमसे ले सकते हैं।

२४-भगवान्‌के नाममें श्रद्धा नहीं हो, प्रेम नहीं हो तो दूसरेके कहनेसे ही लेना आरम्भ कर दें। अच्छा क्या हानि है, नाम लिया करेंगे, इसी भावसे लें। आदत डालें, फिर काम होगा ही। क्योंकि भगवन्नाममें वस्तुशक्ति ही ऐसी है, पाप नाश करनेकी स्वाभाविक शक्ति ऐसी है कि जीभपर नाम आते ही वह मलका नाश करेगा ही।

२५-भगवन्नाम पापोंका नाश करके ही शान्त नहीं हो जाता। पापका नाश करनेके बाद हृदयमें ज्ञानकी ज्योति पैदा करता है, ज्ञानके बाद भगवान्‌के प्रति प्रेम उत्पन्न करता है। हुआ यह कि फिर स्वयं नामी खिंच आते हैं।

२६-भगवान्‌के नाम, रूप, लीला, धाममें अन्तर नहीं है। ये सब भगवत्स्वरूप ही हैं।

२७-नाम भगवान्‌को हमारी ओर खींचता है और हमें भगवान्‌की ओर ले जाता है, दोनों ही काम करता है।

२८-सबसे बड़ी मूर्खता और सबसे बड़ा मोह यह है कि हम विषयोंसे सुखकी आशा करते हैं। इस मूर्खता तथा मोहको मिटानेके लिये भी भगवान्‌का नाम ही लेना चाहिये।

२९-यह याद कर लेनेकी बात है कि मनसे, वाणीसे, शरीरसे दिन-रात चौबीसों घंटे ही निरन्तर भजन होता रहे।

३०-निरन्तर दिन-रात भजन हो—इसके लिये कुछ समय प्रतिदिन एकान्तमें बैठकर भजनका अभ्यास करें। मान लें यदि दो घंटे एकान्तमें बैठकर लगातार भजन करेंगे तो फिर इससे शेष बाईस घंटेतक भजन करनेकी शक्ति मिलती रहेगी।

****

३१-भगवद्भजनका सबसे सरल प्रकार है—भगवान्‌के नामका स्मरण—नामका जप। स्मरण न हो सके तो जीभसे ही निरन्तर नाम लेनेका अभ्यास करें। नाम-जपके द्वारा असम्भव सम्भव होता है।

३२-प्रत्येक मनुष्यको प्रतिदिन एकान्तमें बैठकर लगातार कम-से-कम दो घंटे नाम-जपका अभ्यास अवश्य करना चाहिये।

३३-सर्वोत्तम काम है दिन-रात भजन करना।

३४-यदि मनुष्य चेष्टा रखे तो एक लाख नाम-जप, नहीं सही—पचास हजार जप तो बहुत आसानीसे कर सकता है।

३५-नाम लेते-लेते अन्तरके मलका नाश होता है फिर नामका स्वाद प्रकट होता है, नाममें स्वाद आ जानेपर तो फिर नाम छूटना कठिन हो जाता है।

३६-नामकी पूँजी खरी पूँजी है। यह जिसके पास है, उसे यमराजका भय नहीं है।

३७-जहाँ भगवान्‌का नाम होता है, वहाँ यमदूत नहीं आ सकते।

३८-यदि सचमुच भगवान्‌का नाम-जप होने लग जाय तो विपत्ति सम्पत्तिके रूपमें परिणत हो जाय।

३९-गोस्वामी तुलसीदासजीने तो यहाँतक कह दिया है कि—

तुलसी जाके बदन ते, धोखेहु निकसत राम।
ताके पगकी पगतरी, मोरे तनुको चाम॥

धन्य है इस नामप्रेमको।

४०-सारे साधनोंका प्राण है—भगवान्‌का नाम।

'नाम राम को अंक है, सब साधन हैं सून।'

खूब भजन करो और दूसरोंसे करवाओ।

४१-मनुष्य-जन्ममें ही मनुष्य अपने मनकी गंदगी सर्वथा मिटा सकता है। वह मनुष्य-जन्म हमलोगोंको प्राप्त है। भगवन्नामरूपी अग्निसे मनकी सारी गंदगीको जला डालिये।

****

४२- **नामचिन्तामणिः कृष्णश्चैतन्यरसविग्रहः ।**
पूर्णः शुद्धो नित्यमुक्तोऽभिन्नात्मा नामनामिनोः ॥

नाम-चिन्तामणि ही श्रीकृष्ण है, वह चैतन्यरसविग्रह पूर्ण पवित्र और नित्यमुक्त है, नाम और नामी दोनों अभिन्न हैं।

४३-जो मनुष्य सचमुच भगवान्‌के नामका आश्रय लेता है, वही भाग्यवान् है, वही सुखी है और वही सच्चा साधक है।

४४-जिसकी जीभ और चित्तवृत्ति भगवन्नाममें लगी है, वही साधु है, उसका जीवन धन्य है और उसका सत्सङ्ग सभीको वाञ्छनीय है।

४५-जिसकी जिह्वा निरन्तर पतित-पावन हरिनामकी रट लगाती रहती है, वह चाण्डाल होनेपर भी सबसे श्रेष्ठ है; क्योंकि वही प्रभुका प्यारा है।

४६-भगवान्‌के नाम-कीर्तनसे पापोंका नाश ही नहीं होता। पापनाशके लिये तो शास्त्रोंमें अनेक प्रायश्चित्त बतलाये हैं।

४७-नामसे सायुज्यमोक्षकी आकाङ्क्षा भी मिट जाती है, क्योंकि उस मोक्षमें प्रियतमके नाम-गुणका कीर्तन कहाँ?

४८-श्रीहरिदास महाराजने कहा था—

केह बोले नाम है ते होय पापक्षय। केह बोले नाम है ते मोक्ष लाभ हय ॥
हरिदास कहे नामेर ए दुइ फल न हे। नामेर फले कृष्ण दे प्रेम उपजये ॥

नामका फल तो है पञ्चम पुरुषार्थ—श्रीकृष्णप्रेमकी प्राप्ति। पापनाश और मुक्ति तो नामके आनुषङ्गिक फलमात्र हैं; जैसे सूर्यके उदय होनेपर प्रकाश होता ही है।

४९-जैसे जगत्‌के प्रकाशक प्रभाकरके प्रकट होते ही जगत्‌का सारा अंधकार नष्ट हो जाता है, वैसे ही नामरूपी सूर्यके उदय होते ही पाप-समूह समूल नष्ट हो जाते हैं। भगवान्‌का नाम अज्ञान-समुद्रसे तरनेके लिये तरणिके समान है। ऐसे जगन्मङ्गलकारी हरिनामकी जय हो।' **'जयति जगन्मङ्गल हरेर्नाम।'**

५०-भगवन्नामकी वास्तविक महिमा क्या है, कोई कह नहीं सकता। वह अचिन्त्य है, अनिर्वचनीय है। नामकी महिमा लोगोंने जो गायी है, वह तो कृतज्ञ-हृदयसे उद्गारमात्र है। अर्थात् जिन महापुरुषोंको नामसे अशेष लाभ हुए हैं, उन्होंने उन अशेष लाभोंको लक्ष्यमें रखकर भगवन्नामकी महिमा गायी है।

५१-नामके विषयमें इसके आगे क्या कहूँ, तुलसीदासजीने कलम तोड़ दी—

'राम न सकहिं नाम गुन गाई।'

५२-नाम-जपमें और मन्त्र-जपमें इतना ही अन्तर है कि मन्त्रमें विधिकी प्रधानता होती है और नाममें श्रद्धाकी। नाम किसी प्रकार भी विधि-अविधिपूर्वक लिया जाय तो लाभदायक होता है और मन्त्रका अविधिपूर्वक जप करनेसे कहीं-कहीं उससे हानि भी हो जाया करती है। अतः नाम-जपसे सदा सबका लाभ-ही-लाभ है।

५३-साधकको चाहिये कि वह व्यर्थका बोलना बन्द कर दे और उठते-बैठते, चलते-फिरते, शुद्धि-अशुद्धिमें जीभसे बराबर भगवान्‌का नाम लेता रहे। अपने जिम्मेका काम सब करे, पर कामभरको बोले और जीभको लगाये रखे भगवान्‌के नाम-जपमें। व्यर्थ बोलना बंद कर देनेसे चार लाभ होते हैं—झूठ छूटता है, परनिन्दा छूटती है, व्यर्थकी चर्चा छूटती है तथा वाणीमें शक्ति आ जाती है।

५४-जिह्वाके दोषसे बचनेके लिये यह आवश्यक है कि हम अधिक समयतक मौन रहें और इस प्रकारकी प्रतिज्ञा अवश्य कर लें कि अनिवार्य हुए बिना बोलेंगे ही नहीं तथा वह भी आवश्यकताभर, अधिक नहीं और वह भी अच्छी तरह सोच-विचारकर, जहाँ-तहाँ जैसे-तैसे नहीं। दूसरे यह निश्चय करें कि वाणी भगवान्‌का नाम लेनेके लिये मिली है, अतएव उसको बराबर भगवान्‌का नाम लेनेमें लगाये रखना है। आवश्यकता होनेपर कम-से-कम बोलकर पुनः भगवान्‌का नाम लेना आरम्भ कर देना है।

५५-वे लोग सचमुच बड़े भाग्यशाली हैं, जिनको बहुत कम बोलना पड़ता है और जो निरन्तर भगवान्‌का नाम लेते हैं।

५६-प्रातःकाल उठनेसे रात्रिमें सोनेतक जीभसे निरन्तर भगवान्‌का नाम आता रहे—इसकी पूरी चेष्टा करनी चाहिये। इससे अपने-आप बोलना कम हो जायगा और पर-चर्चाको अवकाश ही नहीं मिलेगा। भगवान्‌का नाम न भूले; भूल जाय तो इसके लिये खेद हो।

५७-भगवन्नाम-जप करते समय उसे सुनते रहें। इससे मनको उसमें लगाना पड़ेगा, बिना मनको उसमें लगाये नाम सुन न सकेंगे।

५८-मनमें यह विश्वास होना चाहिये कि नाम भगवान् ही है। भगवान् जब हमारी जिह्वापर आ गये तो भगवान्‌के सारे दिव्य गुण हमारे अंदर आ गये। भगवान्‌के गुणोंको अपने अंदर उतरता देखे—करुणा, दया, प्रेम, अहिंसा, अस्तेय आदि गुण मेरेमें आ रहे हैं। नाम मुँहमें आते ही अपनेको माने—'मैं पवित्र हूँ।'

५९-नाम-नामी एक हैं, अतएव भगवान्‌के नाम-जपके समय यह अनुभव करें कि 'भगवान् मेरे हृदयमें आ रहे हैं, भगवान्‌की झाँकी मेरे हृदयमें उतर रही है।'

६०-नामकी शरण हो जाय—दूसरे किसी साधनकी उपेक्षा एवं अपेक्षा न करे; भगवान्‌के नामपर अपनेको निर्भर कर दे। नाम सर्वशक्तिमान् है—यह विश्वास करके उसीपर निर्भर हो जाय। अर्थात् अपनेको उसपर छोड़कर निश्चिन्त हो जाय। अपना भला कब कैसे होगा, इसके विषयमें निश्चिन्त हो जाय। शरणागत कुछ माँगता नहीं; वह कुछ चाहता नहीं; वह भगवान्‌पर ही निर्भर रहता है—सब प्रकारसे। अपना भला किसमें है, इसका निश्चय भी वह नहीं करता। वह भगवान्‌से कहता है—

'मेरा भला किसमें है तथा कैसे उसे प्राप्त करना है—यह आप जानें। नाथ! आपकी शक्तिसे ही सब काम होगा और वही काम होगा जो आप चाहेंगे।'

६१-वाणीको भगवान्‌के नाममें लगा दे। कम-से-कम जितनी बात, जब, जिस रूपमें बोलनी आवश्यक हो, उतनी ही उस रूपमें बोले, बाकी समयमें अपनेको मौन-सा करके भगवान्‌के नामका जप करता रहे। जीभसे भगवान्‌का नाम लेता रहे और अपने कानोंद्वारा उसे सुनता रहे—यह मानसिक जप है। इसका बड़ा महत्त्व है।

६२-वाणीका संयम करनेका एक ही उपाय है—भगवन्नाम-जप एवं स्वाध्यायको वाणीका विषय बना ले। जीभके लिये भगवान्‌के नामका जप ही एकमात्र काम रह जाय, दूसरे किसी भी कामके लिये उसमेंसे समय निकालना न पड़े। जो व्यक्ति इस प्रकारका जीवन बना लेता है, वह जहाँ रहता है, वहीं उसके द्वारा जगत्‌को एक बहुत बड़ी चीज अपने-आप अनायास ही मिलती रहती है।

६३-जीभ स्थूल अङ्ग है, कर्मेन्द्रिय है पर यदि यह भगवान्‌के नामके साथ लगी रही तो यह जीवनको खींच ले जायगी और जीवनके अन्तमें भगवान्‌का नाम आया कि काम बना।

६४-भगवान्‌के नाम-जपका अभ्यास होनेके बाद मनसे सोचते और हाथसे काम करते रहनेपर भी जीभसे नाम अपने-आप निकलता रहेगा। सारे शास्त्रोंके सत्संगका फल यही है कि 'भगवान्‌के नाममें रुचि हो जाय।'

६५-श्रीभगवान्‌के एक भी गुणका रहस्य, एक भी नामकी महिमा, एक भी चरित्रका प्रभाव, एक भी शक्तिका तत्त्व जान लिया जाय अथवा एक भी रूपकी जरा-सी भी झाँकीका ज्ञान हो जाय तो फिर भगवान्‌से क्षणभरके लिये भी चित्त न हटे।

६६-मेरी समझसे सबसे सरल साधन है नामका अभ्यास। मुखसे निरन्तर भगवान्‌के नामका उच्चारण होता रहे और हाथोंसे काम। अभ्यास होनेपर ऐसा होना खूब सम्भव है—बस, ***'मुख नामकी ओट लई है।'*** विश्वास होगा तो इस नामोच्चारणमात्रसे ही कल्याण हो जायगा।

६७-श्रीभगवान्पर विश्वास रखकर उनका नाम-जप करना चाहिये और उनकी कृपापर भरोसा करके अपनेको सर्वतोभावसे उन्हींपर छोड़ देना चाहिये। ऐसा न हो सके तो भी नाम-जप करना चाहिये। जैसा भाव हो, उसीसे कल्याण होगा—आंशिक कृपाके दर्शन होंगे और सांसारिक वासनाएँ किसी अंशमें पूर्ण होंगी। परन्तु इसमें घाटा यही रह जायगा कि शीघ्र ही भगवत्प्रेमकी प्राप्ति नहीं होगी।

६८-भगवान्को याद रखनेका उपदेश, घंटे-दो-घंटे या अधिक नियमित कालके लिये नाम-जपकी आज्ञा, इतनी संख्या पूरी करनेपर सिद्धि हो जायगी, इस लोभसे संख्यायुक्त जप या संख्याकी गणनासे जप हो जाता है, यों भूल रह जाना सम्भव है, इसलिये संख्याकी अवधि बाँधकर जप करना चाहिये, यह आदेश तो उन आरम्भिक साधकोंके लिये है, जो भगवान्के प्रेमी नहीं हैं। न करनेकी अपेक्षा ऐसा करना बहुत उत्तम है।

६९-प्रेमीजनोंको तो अपने प्रेमास्पदका नाम इतना प्यारा होता है कि स्वयं तो वे उसे कभी भूल ही नहीं सकते, दूसरेको कभी भूले-भटके उच्चारण करते सुन लेते हैं, तो उसकी चरण-धूलि लेने दौड़ते हैं।

७०-श्रीभगवान्के नामका जप जैसे बने, वैसे ही करते रहिये। करते-करते नामके प्रतापसे विश्वास बढ़ेगा, न घबराइये, न हार मानिये।

७१-मैं तो एक श्रीभगवन्नामको जानता हूँ। उसका पूरा महत्त्व तो नहीं जानता, परंतु विश्वास है कि भगवन्नामसे सब कुछ हो सकता है और आपको भी उसीका आश्रय लेनेकी नम्र सलाह देता हूँ।

७२-उपदेश देनेका तो मैं अधिकारी नहीं हूँ। सलाहके तौरपर यही कह सकता हूँ कि आलस्य, असंयम और अविश्वासका त्याग करके श्रीभगवान्का नाम-जप करना चाहिये तथा नाम-जप करते हुए ही भगवत्सेवाके भावसे कर्तव्यकर्म करनेकी आदत डालनी चाहिये।

७३-सीधे तीन काम हैं—

(१) भगवान्‌का नाम-जप,

(२) बाहरी पापोंका बिलकुल त्याग और

(३) भगवान्‌की दयापर विश्वास।

इनसे सारी बातें आप ही ठीक हो जायँगी। इनमें भी तीनों न हों तो दो करें; नहीं तो कम-से-कम एक भगवन्नामका जप-स्मरण निरन्तर करते रहनेकी कोशिश करना चाहिये। कलियुगमें केवल क्रियासे तारनेवाला, महान् फल देनेवाला भगवन्नाम ही है और सारे साधनोंमें भावकी आवश्यकता है। नाम भावसे, कुभावसे कैसे भी लिया जाय, कल्याणकारी ही है। अवश्य ही भावका तिरस्कार नहीं करना चाहिये। प्रत्येक क्रियामें, जहाँतक हो ऊँचे-से-ऊँचे भावमें, पूरी विधि तथा बाहरी क्रिया—तीनोंका ही खयाल रखकर तीनों ही करते रहना चाहिये। ***'हारेको हरिनाम'*** है।

७४-श्रीभगवान्‌का नाम-जप करते रहिये और कम-से-कम यह दृढ़ चेष्टा रखिये, जिसमें वाणी और शरीरसे कोई पाप न हो। मानसिक पापोंसे बचनेकी यथासाध्य कोशिश कीजिये। नामका आश्रय होगा तो पाप आप ही नष्ट हो जायँगे।

७५-एक उपाय बहुत उत्तम है—प्रतिज्ञा कर लीजिये प्रतिक्षण—लगातार नाम-जपकी। नाम-जपका तार यदि जाग्रत्-अवस्थामें कभी नहीं टूटेगा तो निश्चय ही सब पाप मर जायँगे। यह महात्माओंका अनुभूत सरल प्रयोग है।

७६-रही मेरे बल देनेकी बात सो मेरे पास एक ही बल है—***'हारेको हरिनाम'*** और आपसे भी यही कहता हूँ, उसका आश्रय लीजिये। सारे पाप-तापोंसे छुड़ानेमें वह पूरा समर्थ है।

—★—

भगवन्नाम सर्वोपरि तीर्थ

भक्त प्रह्लाद कहते हैं—

कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति कलौ वक्ष्यति प्रत्यहम्।
नित्यं यज्ञायुतं पुण्यं तीर्थकोटिसमुद्भवम्॥

(स्कन्द०, द्वारकामा० ३८।४५)

'कलियुगमें जो प्रतिदिन 'कृष्ण,' कृष्ण,' 'कृष्ण' उच्चारण करेगा उसे नित्य दस हजार यज्ञ तथा करोड़ों तीर्थोंका फल प्राप्त होगा।'

यावन्ति भुवि तीर्थानि जम्बूद्वीपे तु सर्वदा।
तानि तीर्थानि तत्रैव विष्णोर्नामसहस्रकम्॥
तत्रैव गङ्गा यमुना च वेणी
गोदावरी तत्र सरस्वती च।
सर्वाणि तीर्थानि वसन्ति तत्र
यत्र स्थितं नामसहस्रकं तत्॥

(पद्म०, उत्तर० ७२।९-१०)

जहाँ विष्णुभगवान्‌के सहस्रनामका पाठ होता है, वहीं पृथ्वीपर जम्बूद्वीपके जितने तीर्थ हैं, वे सब सदा निवास करते हैं। जहाँ भगवान्‌का सहस्रनाम विराजित है, वहीं गङ्गा, यमुना, कृष्णा, वेणी, गोदावरी, सरस्वती—नहीं, नहीं समस्त तीर्थ निवास करते हैं।

तत्र पुत्र गया काशी पुष्करं कुरुजाङ्गलम्।
प्रत्यहं मन्दिरे यस्य कृष्ण कृष्णेति कीर्तनम्॥

(स्कन्द०, वै० मार्ग० मा० १५।५०)

(भगवान् ब्रह्माजीसे कहते हैं—) 'वत्स! जिसके घरमें प्रतिदिन 'कृष्ण', 'कृष्ण'का कीर्तन होता है वहीं गया, काशी, पुष्कर तथा कुरुजाङ्गल (तीर्थ) रहते हैं।'

सकृन्नारायणेत्युक्त्वा पुमान् कल्पशतत्रयम्।
गङ्गादिसर्वतीर्थेषु स्नातो भवति निश्चितम्॥

(ब्रह्मवैवर्त०)

'जो पुरुष एक बार 'नारायण' नामका उच्चारण कर लेता है, वह निश्चित ही तीन सौ कल्पोंतक गङ्गादि समस्त तीर्थोंमें स्नान कर चुकता है।'

सर्वेषामेव यज्ञानां लक्षाणि च व्रतानि च।
तीर्थस्नानानि सर्वाणि तपांस्यनशनानि च॥
वेदपाठसहस्राणि प्रादक्षिण्यं भुवः शतम्।
कृष्णनामजपस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥

(ब्रह्मवैवर्त०)

'समस्त यज्ञ, लाखों व्रत, सम्पूर्ण तीर्थोंका स्नान, सब प्रकारके तप, अनशनादि व्रत, सहस्रों वेदपाठ, पृथ्वीकी सौ परिक्रमाएँ—ये सब श्रीकृष्ण-नाम-जपकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हैं।'

राम रामेति रामेति रामेति च पुनर्जपन्।
स चाण्डालोऽपि पूतात्मा जायते नात्र संशयः॥
कुरुक्षेत्रं तथा काशी गया वै द्वारका तथा।
सर्वं तीर्थं कृतं तेन नामोच्चारणमात्रतः॥

(पद्मपुराण, उत्तर० ७१।२०-२१)

'राम', 'राम', 'राम', 'राम'—इस प्रकार बार-बार जप करनेवाला चाण्डाल हो तो भी वह पवित्रात्मा हो जाता है—इसमें कोई संदेह नहीं है। उसने केवल नामका उच्चारण करते ही कुरुक्षेत्र, काशी, गया और द्वारका आदि सम्पूर्ण तीर्थोंका सेवन कर लिया।

किं वै तीर्थे ते तात पृथिव्यामटने कृते।
यस्य वै नाममहिमा श्रुत्वा मोक्षमवाप्नुयात्॥

तन्मुखं तु महत्तीर्थं तन्मुखं क्षेत्रमेव च।
यन्मुखे राम रामेति तन्मुखं सार्वकामिकम्॥

(पद्मपुराण, उत्तरखण्ड ७१। ३३-३४)

देवर्षि नारदजी कहते हैं—जिनके नामका ऐसा माहात्म्य है कि उसके सुननेमात्रसे मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है, उनका आश्रय छोड़कर तीर्थसेवनके लिये पृथ्वीपर भटकनेकी क्या आवश्यकता है। जिस मुखमें 'राम'-'राम'का जप होता रहता है, वह मुख ही महान् तीर्थ है, वही प्रधान क्षेत्र है तथा वही समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है।

तन्मुखं परमं तीर्थं यत्रावर्तं वितन्वती।
नमो नारायणायेति भाति प्राची सरस्वती॥

(पद्मपुराण, उत्तरखण्ड ७१। १७)

जहाँ '**नमो नारायणाय**' रूपसे आवर्तका विस्तार करती हुई (इन शब्दोंको दुहराती हुई) प्राचीसरस्वती (वाणीरूपी नदी) बहती है। वह मुख ही परम तीर्थ है।

अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान् यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम्।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते॥

(श्रीमद्भागवत ३। ३३। ७)

देवहूतिजी कहती हैं—अहो! वह चाण्डाल ही सर्वश्रेष्ठ है, जिसकी जिह्वाके अग्रभागपर आपका नाम विराज रहा है। जो आपका नाम उच्चारण करते हैं, उन्होंने तप, हवन, तीर्थस्नान सदाचारका पालन और वेदाध्ययन—सब कुछ कर लिया।'

कुरुक्षेत्रेण किं तस्य किं काश्या विरजेन वा।
जिह्वाग्रे वर्तते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम्॥

(नारदमहापुराण, उत्तर० ७। ४)

ब्रह्माजी कहते हैं—'जिसकी जिह्वाके अग्रभागपर 'हरि' ये दो अक्षर

विराजमान हैं, उसे कुरुक्षेत्र, काशी और विरज-तीर्थके सेवनकी क्या आवश्यकता है।'

इस प्रकार तीर्थोंकी तुलनामें भगवन्नामका माहात्म्य सर्वत्र गाया गया है। ऊपर उसमेंसे कुछ ही श्लोक उद्धृत किये गये हैं। नामकी महिमा अतुलनीय है। विशेषतया कलियुगके प्राणियोंके लिये तो भगवन्नाम ही एकमात्र परम साध्य और परम साधन है। जिसने नामका आश्रय ले लिया, उसका जीवन निश्चय ही सफल हो चुका। यहाँ नीचे कुछ नाम-महिमाके महान् वाक्योंका अनुवाद दिया जाता है। उनसे यदि पाठकोंका ध्यान नाम-जप-कीर्तनकी ओर आकर्षित हुआ और वे भगवन्नाम-जप-कीर्तनमें लग गये तो उनका और जगत्का महान् कल्याण होगा। भगवान्के पवित्र नामोंके जप-कीर्तनमें वर्णाश्रमका कोई नियम नहीं है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अन्त्यज, स्त्री—सभी भगवन्नामके अधिकारी हैं, सभी भगवान्का नामकीर्तन करके पापोंसे मुक्त हो सनातन पदको प्राप्त कर सकते हैं।

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रान्त्यजादयः।
यत्र तत्रानुकुर्वन्ति विष्णोर्नामानुकीर्तनम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तास्तेऽपि यान्ति सनातनम्॥

न भगवन्नाममें देश-कालका नियम है, न शुद्धि-अशुद्धिका और न अपवित्र-पवित्र अवस्थाका नियम है। चाहे जहाँ, चाहे जब, चाहे जैसी स्थितिमें—चलते-फिरते, खाते-पीते, सोते—सभी समय भगवान्के नामका कीर्तन करके मनुष्य बाहर-भीतरसे पवित्र हो परमात्माको प्राप्त कर लेता है।

भगवान् विष्णुके पार्षद यमदूतोंसे कहते हैं—

बड़े-बड़े महात्मा पुरुष यह जानते हैं कि 'संकेतमें, (किसी दूसरे अभिप्रायसे) परिहासमें, तान अलापनेमें अथवा किसीकी अवहेलना करनेमें भी यदि कोई भगवान्के नामोंका उच्चारण करता है तो उसके सारे पाप नष्ट

हो जाते हैं। जो मनुष्य गिरते समय, पैर फिसलते समय, अङ्ग-भङ्ग होते समय और साँपके द्वारा डँसे जाते समय, आगमें जलते तथा चोट लगते समय भी विवशतासे (अभ्यास-वश, बिना किसी प्रयत्नके) 'हरि-हरि' कहकर भगवान्‌के नामका उच्चारण कर लेता है, वह यमयातनाका पात्र नहीं रह जाता।'*

यमदूतो! जान या अनजानमें भगवान्‌के नामोंका संकीर्तन करनेसे मनुष्यके सारे पाप भस्म हो जाते हैं। जैसे कोई परमशक्तिशाली अमृतको उसका गुण न जानकर अनजानमें पी ले, तो भी वह अवश्य ही पीनेवालेको अमर बना देता है, वैसे ही अनजानमें उच्चारित करनेपर भी भगवान्‌का नाम अपना फल देकर ही रहता है। (वस्तुशक्ति श्रद्धाकी अपेक्षा नहीं करती।)

भगवान् शङ्कर देवी पार्वतीसे कहते हैं—

'राम'—'यह दो अक्षरोंका मन्त्र जपे जानेपर समस्त पापोंका नाश करता है। चलते, बैठते, सोते (जब कभी भी) जो मनुष्य राम-नामका कीर्तन करता है, वह यहाँ कृतकार्य होकर जाता है और अन्तमें भगवान् हरिका पार्षद बनता है।'†

'राम' यह मन्त्रराज है, यह भय एवं व्याधिका विनाशक है। उच्चारित होनेपर यह द्व्यक्षर मन्त्रराज पृथ्वीमें समस्त कार्योंको सफल करता है।

---

* साङ्केत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः॥
पतितः स्खलितो भग्नः संदष्टस्तप्त आहतः।
हरिरित्यवशेनाह पुमान् नार्हति यातनाम्॥

(श्रीमद्भागवत ६। २। १४-१५)

† रामेति द्व्यक्षरजपः सर्वपापापनोदकः।
गच्छंस्तिष्ठन् शयानो वा मनुजो रामकीर्तनात्॥
इह निर्वर्तितो याति चान्ते हरिगणो भवेत्।

(स्कन्दपुराण, नागरखण्ड)

गुणोंकी खान इस राम-नामका देवतागण भी भलीभाँति गान करते हैं। अतएव हे देवेश्वरि ! तुम भी सदा राम-नाम कहा करो। जो राम-नामका जप करता है, वह सारे पापोंसे (मोहजनित समस्त सूक्ष्म और स्थूल पापोंसे) छूट जाता है।

मुनि आरण्यक भगवान् श्रीरामचन्द्रसे कहते हैं—

श्रीराघवेन्द्र ! ब्रह्महत्याके समान पाप भी तभीतक गर्जते हैं, जबतक आपके नामोंका स्पष्टरूपसे उच्चारण नहीं किया जाता। आपके नामोंकी गर्जना सुनकर महापातकरूपी मतवाले हाथी कहीं छिपनेके लिये जगह ढूँढ़ते हुए भाग खड़े होते हैं। महान् पाप करनेके कारण कातर हृदयवाले मनुष्योंको तभीतक पापका भय रहता है, जबतक वे अपनी जीभसे परम मनोहर राम-नामका उच्चारण नहीं करते।*

भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं ब्रह्माजीसे कहते हैं—

जो कृष्ण ! कृष्ण !! कृष्ण !!! यों कहकर मेरा प्रतिदिन स्मरण करता है, उसे—जिस प्रकार कमल जलको भेदकर ऊपर निकल आता है, उसी प्रकार—मैं नरकसे उबार लेता हूँ।† जो विनोदसे, पाखण्डसे, मूर्खतासे,

---

* तावत् पापभयः पुंसां कातराणां सुपापिनाम्।
यावन्न वदते वाचा रामनाम मनोहरम्॥

† कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति यो मां स्मरति नित्यशः।
जलं भित्वा यथा पद्मं नरकादुद्धारयाम्यहम्॥
दर्शनान्मम भक्तानां मृत्युमाप्नोति यः क्वचित्।
विना मत्स्मरणात् पुत्र मुक्तिमेति स मानवः॥
पापानलस्य दीप्तस्य भयं मा कुरु पुत्रक।
श्रीकृष्णनाममेघोत्थैः सिच्यते नीरबिन्दुभिः॥
कलिकालभुजङ्गस्य तीक्ष्णदंष्ट्रस्य किं भयम्।
श्रीकृष्णनामदारूत्थवह्निदग्धः स नश्यति॥

(स्कन्द, वैष्णव० मार्ग० १५। ३६, ४३, ४४, ४५)

लोभसे अथवा छलसे भी मेरा भजन करता है, वह मेरा भक्त कभी कष्टमें नहीं पड़ता। मृत्युकाल उपस्थित होनेपर जो कृष्णनामकी रट लगाते हैं, वे यदि पापी हों तो भी कभी यमराजका दर्शन नहीं करते। पूर्व-अवस्थामें किसीने सम्पूर्ण पाप किये हों, तथापि यदि वह अन्तकालमें श्रीकृष्ण-नामका स्मरण कर लेता है तो निश्चय ही मुझे प्राप्त होता है। मृत्युकाल उपस्थित होनेपर यदि कोई 'परमात्मा श्रीकृष्णको नमस्कार है' इस प्रकार विवश होकर भी कहे तो वह अविनाशी पदको प्राप्त होता है। जो श्रीकृष्णका उच्चारण करके प्राणत्याग करता है, उसे प्रेतराज यम दूरसे ही खड़े होकर भगवद्धाममें जाते देखते हैं। यदि 'कृष्ण-कृष्ण' रटता हुआ कोई श्मशानमें अथवा रास्तेमें भी मर जाता है तो वह भी मुझे ही प्राप्त होता है—इसमें संशय नहीं है। जो मेरे भक्तोंका दर्शन करके कहीं मृत्युको प्राप्त होता है, वह मनुष्य मेरा स्मरण किये बिना भी मोक्ष प्राप्त कर लेता है। बेटा! पापरूपी प्रज्वलित अग्निसे भय न करो, श्रीकृष्णके नामरूपी मेघोंके जलकी बूँदोंसे उसे खींचकर बुझा दिया जा सकता है। तीखी दाढोंवाले कलिकालरूपी सर्पका क्या भय है? श्रीकृष्णके नामरूपी ईंधनसे उत्पन्न आगके द्वारा वह जलकर नष्ट हो जाता है। पापरूपी अग्निसे दग्ध होकर जो सत्कर्मकी चेष्टासे शून्य हो गये हैं, ऐसे मनुष्योंके लिये श्रीकृष्णके नाम-स्मरणके सिवा दूसरा कोई औषध नहीं है। संसार-समुद्रमें डूबकर जो महान् पापोंकी लहरोंमें गिर गये हैं, ऐसे मनुष्योंके लिये श्रीकृष्ण-स्मरणके सिवा दूसरी कोई गति नहीं है। जो पापी हैं, किंतु जो मरना नहीं चाहते, ऐसे मनुष्योंके लिये मृत्युकालमें श्रीकृष्ण-चिन्तनके सिवा परलोकयात्राके उपयुक्त दूसरा कोई पाथेय (राहखर्च) नहीं है। उसीका जन्म और जीवन सफल है तथा उसीका मुख सार्थक है, जिसकी जिह्वा सदा कृष्ण-कृष्णकी रट लगाये रहती है। समस्त पापोंको भस्म कर डालनेके लिये मुझ भगवान्‌के नाममें जितनी शक्ति है, उतना पातक कोई पातकी मनुष्य कर

ही नहीं सकता।* कृष्ण-कृष्णके कीर्तनसे मनुष्यके शरीर और मन कभी श्रान्त नहीं होते, उसे पाप नहीं लगता और विकलता भी नहीं होती। जो श्रीकृष्ण-नामोच्चारणरूपी पथ्यका कलियुगमें त्याग नहीं करता उसके चित्तमें पापरूपी रोग नहीं पैदा होते। श्रीकृष्ण-नामका कीर्तन करते हुए मनुष्यकी आवाज सुनकर दक्षिण दिशाके अधिपति यमराज उसके सौ जन्मोंके पापोंका परिमार्जन कर देते हैं। सैकड़ों चान्द्रायण और सहस्रों पाक-व्रतसे जो पाप नष्ट नहीं होता, वह 'कृष्ण-कृष्ण' ध्वनिसे चला जाता है। कोटि-कोटि चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणमें स्नान करनेसे जो फल बतलाया गया है, उसे मनुष्य 'कृष्ण-कृष्ण'के कीर्तनमात्रसे पा लेता है। जो जिह्वा कलिकालमें श्रीकृष्णके गुणोंका कीर्तन नहीं करती, वह दुष्टा मुँहमें न रहे, रसातलको चली जाय। जो कलियुगमें श्रीकृष्णके गुणोंका प्रयत्नपूर्वक कीर्तन करती है, वह जिह्वा अपने मुखमें हो या दूसरेके मुखमें, वन्दना करनेयोग्य है। जो दिन-रात श्रीकृष्णके गुणोंका कीर्तन नहीं करती, वह जिह्वा नहीं—मुखमें कोई पापमयी लता है, जिसे जिह्वाके नामसे पुकारा जाता है। जो 'श्रीकृष्ण,

---

* जीवितं जन्म सफलं मुखं तस्यैव सार्थकम्।
सततं रसना यस्य कृष्ण कृष्णेति जल्पति॥
नाम्नोऽस्य यावती शक्तिः पापनिर्दहने मम।
तावत् कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः॥ (१५।५१-५२)

मुखे भवतु मा जिह्वासती यातु रसातलम्।
न सा चेत् कलिकाले या श्रीकृष्णगुणवादिनी॥
स्ववक्त्रे परवक्त्रे च वन्द्या जिह्वा प्रयत्नतः।
कुरुते या कलौ पुत्र श्रीकृष्णगुणकीर्तनम्॥
पापवल्ली मुखे तस्य जिह्वारूपेण कीर्त्यते।
या न वक्ति दिवारात्रौ श्रीकृष्णगुणकीर्तनम्॥
पततां शतखण्डां तु सा जिह्वा रोगरूपिणी।
श्रीकृष्ण कृष्ण कृष्णेति श्रीकृष्णेति न जल्पति॥ (१५।६३—६६)

कृष्ण, कृष्ण, श्रीकृष्ण' इस प्रकार श्रीकृष्णनामका कीर्तन नहीं करती, वह रोगरूपिणी जिह्वा सौ टुकड़े होकर गिर जाय।

योगेश्वर सनकजी श्रीनारदजीसे कहते हैं—

सत्ययुगमें ध्यान, त्रेतामें यज्ञोंद्वारा यजन और द्वापरमें भगवान्‌का पूजन करके मनुष्य जिस फलको पाता है, उसे ही कलियुगमें केवल भगवान् केशवका कीर्तन करके पा लेता है।

जो मानव निष्काम अथवा सकामभावसे **'नमो नारायणाय'**का कीर्तन करते हैं, उनको कलियुग बाधा नहीं देता।

जो लोग प्रतिदिन 'हरे! केशव! गोविन्द! जगन्मय! वासुदेव!' इस प्रकार कीर्तन करते हैं, उन्हें कलियुग बाधा नहीं पहुँचाता अथवा जो शिव, शङ्कर, रुद्र, ईश, नीलकण्ठ, त्रिलोचन इत्यादि महादेवजीके नामोंका उच्चारण करते हैं उन्हें भी कलियुग बाधा नहीं देता। नारदजी! 'महादेव! विरूपाक्ष! गङ्गाधर! मृड! और अव्यय!' इस प्रकार जो शिव-नामोंका कीर्तन करते हैं, वे कृतार्थ हो जाते हैं। अथवा जो 'जनार्दन! जगन्नाथ! पीताम्बरधर! अच्युत!' इत्यादि विष्णु-नामोंका उच्चारण करते हैं, उन्हें इस संसारमें कलियुगसे भय नहीं है।

भगवन्नाममें अनुरक्त चित्तवाले पुरुषोंका अहोभाग्य है, अहोभाग्य है! वे देवताओंके लिये भी पूज्य हैं। इसके अतिरिक्त अन्य अधिक बातें कहनेसे क्या लाभ। अतः मैं सम्पूर्ण लोकोंके हितकी बात कहता हूँ कि 'भगवन्नामपरायण मनुष्योंको कलियुग कभी बाधा नहीं दे सकता। भगवान् विष्णुका नाम ही, नाम ही, नाम ही मेरा जीवन है। कलियुगमें दूसरी कोई गति नहीं है, नहीं है, नहीं है*।'

---

* अहो भाग्यमहो भाग्यं हरिनामरतात्मनाम्।
त्रिदशैरपि ते पूज्याः किमन्यैर्बहुभाषितैः॥

श्रीश्रुतदेव कहते हैं—

हँसीमें, भयसे, क्रोधसे, द्वेषसे, कामसे अथवा स्नेहसे, पापी-से-पापी मनुष्य भी यदि एक बार श्रीहरिका पापहारी नाम उच्चारण कर लेते हैं तो वे भी भगवान् विष्णुके निरामय धाममें जा पहुँचते हैं।*

भक्त प्रह्लाद कहते हैं—

जो मनुष्य नित्य 'कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण'का जप करता है, कलियुगमें श्रीकृष्णपर उसका निरन्तर प्रेम बढ़ता है।

जो मनुष्य जागते-सोते समय प्रतिदिन 'कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण' कीर्तन करता है, वह श्रीकृष्णस्वरूप हो जाता है।

'कलियुगमें श्रीकृष्णका कीर्तन करनेसे मनुष्य अपनी बीती हुई सात पीढ़ियों और आनेवाली चौदह पीढ़ियोंके सब लोगोंका उद्धार कर देता है।' †

यमराज अपने दूतोंको आदेश देते हैं—'जहाँ भगवान् विष्णु तथा भगवान् शिवके नामोंका उच्चारण होता है, वहाँ मत जाया करो।' इसपर उन्होंने हरि-हरकी १०८ नामोंकी नामावलि कही है—जो धर्मराजरचित सारे पापोंका बीज-नाश करनेवाली सुललित हरि-हर नामावलिका नित्य जप

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥
(नारदमहापुराण, पूर्व० ४१। ११२, ११४)

* हास्याद् भयात्तथा क्रोधाद् द्वेषात् कामादथापि वा।
स्नेहाद् वा सकृदुच्चार्य विष्णोर्नामाघहारि च॥
पापिष्ठा अपि गच्छन्ति विष्णोर्धाम निरामयम्।
(स्कन्द०, वैष्णवखण्ड, वैशाखमाहात्म्य २१। ३६-३७)

† अतीतान् सप्तपुरुषान् भविष्यांश्च चतुर्दश।
नरस्तारयते सर्वान् कलौ कृष्णेति कीर्तनात्॥
(स्कन्द०, प्रभासखण्ड, द्वारकामाहात्म्य)

****

करेगा, उसका पुनर्जन्म नहीं होगा।

नामावलि नीचे दी जाती है—

गोविन्द माधव मुकुन्द हरे मुरारे
शम्भो शिवेश शशिशेखर शूलपाणे।
दामोदराच्युत जनार्दन वासुदेव
त्याज्या भटा य इति संततमामनन्ति॥
गङ्गाधरान्तकरिपो हर नीलकण्ठ
वैकुण्ठ कैटभरिपो कमठाब्जपाणे।
भूतेश खण्डपरशो मृड चण्डिकेश॥ त्याज्या॰॥
विष्णो नृसिंह मधुसूदन चक्रपाणे
गौरीपते गिरिश शङ्कर चन्द्रचूड।
नारायणासुरनिबर्हण शार्ङ्गपाणे॥ त्याज्या॰॥
मृत्युञ्जयोऽग्र विषमेक्षण कामशत्रो
श्रीकान्त पीतवसनाम्बुदनील शौरे।
ईशान कृत्तिवसन त्रिदशैकनाथ॥ त्याज्या॰॥
लक्ष्मीपते मधुरिपो पुरुषोत्तमाद्य
श्रीकण्ठ दिग्वसन शान्त पिनाकपाणे।
आनन्दकन्द धरणीधर पद्मनाभ॥ त्याज्या॰॥
सर्वेश्वर त्रिपुरसूदन देवदेव
ब्रह्मण्यदेव गरुडध्वज शङ्खपाणे।
त्र्यक्षोरगा भरण बालमृगाङ्कमौले॥ त्याज्या॰॥
श्रीराम राघव रमेश्वर रावणारे
भूतेश मन्मथरिपो प्रमथाधिनाथ।
चाणूरमर्दन हृषीकपते मुरारे॥ त्याज्या॰॥

शूलिन् गिरीश रजनीशकलावतंस
कंसप्रणाशन सनातन केशिनाश।
भर्ग त्रिनेत्र भव भूतपते पुरारे ॥ त्याज्या० ॥

गोपीपते यदुपते वसुदेवसूनो
कर्पूरगौर वृषभध्वज भालनेत्र।
गोवर्धनोद्धरण धर्मधुरीण गोप ॥ त्याज्या० ॥

स्थाणो त्रिलोचन पिनाकधर स्मरारे
कृष्णानिरुद्ध कमलाकर कल्मषारे।
विश्वेश्वर त्रिपथगार्द्रजटाकलाप ॥ त्याज्या० ॥

अष्टोत्तराधिकशतेन सुचारुनाम्नां
संदर्भितां ललितरत्नकदम्बकेन।
सन्नामकां दृढगुणां द्विजकण्ठगां यः
कुर्यादिमां स्रजमहो स यमं न पश्येत् ॥

अगस्तिरुवाच

यो धर्मराजरचितां ललितप्रबन्धां
नामावलीं सकलकल्मषबीजहन्त्रीम्।
धीरोऽत्र कौस्तुभभृतः शशिभूषणस्य
नित्यं जपेत् स्तनरसं स पिबेन्न मातुः ॥

(स्कन्द०, काशी०, पूर्वार्द्ध०, अध्याय ८)

श्रीभगवन्नाम-स्मरण

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्
पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात्
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्
कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने ।।

भगवान्‌का नाम कितना पवित्र है, कैसा पावन है, उसमें कितनी शान्ति है, कैसी शक्ति है और उससे क्या हो सकता है ? यह कोई नहीं बतला सकता। अथाहकी थाह कौन ले ? जिसके माहात्म्यका आरम्भ बुद्धिसे परे पहुँचनेपर होता है, उसका वाणीसे कैसें वर्णन हो सकता है ? जिस प्रकार भगवान् अनिर्वचनीय है, उसी प्रकार उनके नामका माहात्म्य भी अनिर्वचनीय है। शास्त्रोंमें जो भगवन्नाम-माहात्म्य लिखा है वह वास्तविक माहात्म्यका प्रकाशक नहीं है, वह तो नाम-जपसे लाभ उठानेवाले महानुभावोंके कृतज्ञ हृदयका उद्गारमात्र है। वास्तविक माहात्म्य तो कोई कह ही नहीं सकता। जो जिस भावसे भगवान्‌के नामको जपता है उसे अपने उस भावके अनुसार ही लाभ होता है। आज भी भगवन्नामसे लाभ उठानेवाले बहुत लोग हैं। इस विषयमें केवल धार्मिक क्षेत्रके ही नहीं, राजनीतिक क्षेत्रके भी कितने ही महानुभावोंसे मेरी बातें हुई हैं, उन्होंने कहा ही नहीं लिखकर भी दिया है कि 'हमें भगवन्नामसे परम लाभ हुआ।'

आजकल एक ऐसी शङ्का होती है कि 'जहाँ भगवन्नामके माहात्म्यके विषयमें इतना कहा जाता है वहाँ देखनेमें उसके विपरीत क्यों आता है ? यदि भगवन्नाममें कोई वास्तविक शक्ति होती तो निरन्तर और अधिक संख्यामें नाम-जप करनेवाले लोगोंमें विशेष परिवर्तन क्यों नहीं देखा जाता ? शङ्का कई अंशोंमें ठीक है, परन्तु बहुत-से कर्म ऐसे होते हैं जिनका परोक्षमें भारी फल होनेपर भी प्रत्यक्षमें नहीं देखा जाता अथवा तत्काल न दीखकर देरसे दीखता है। कई बार पूर्ण फल न होनेके कारण आंशिक रूपमें

होनेवाले फलका पता नहीं लगता। एक आदमी बीमार है और उसके कई रोग हैं, दवासे पेटका दर्द दूर हो गया पर अभी ज्वर नहीं छूटा। इससे क्या यह समझना चाहिये कि उसे दवासे कोई लाभ ही नहीं हो रहा है ? लाभ होनेमें जो विलम्ब होता है उसमें कुपथ्य ही प्रधान कारण है। हम नाम-जप करनेके साथ ही नामापराध भी बहुत करते हैं। इसके अतिरिक्त श्रद्धा और विश्वासपूर्वक नाम-जप नहीं करते। कहीं बहुत थोड़े मूल्यमें उसे बेच देते हैं। मामूली सांसारिक वस्तुओंकी प्राप्ति अथवा मान-बड़ाईके बदलेमें उसे खो देते हैं। हम कीर्तन करते हैं और फिर पूछते हैं कि 'क्यों जी! आज मैंने कैसा कीर्तन किया?' इस प्रकार अश्रद्धा, अविश्वास, सकामभाव अथवा लोगोंमें बड़ाई पानेके लिये किये जानेवाले नाम-जप-कीर्तनसे वास्तविक फल देरमें हो तो क्या आश्चर्य ? नाम-कीर्तनका एक सुन्दर क्रम और स्वरूप श्रीमद्भागवतमें बतलाया गया है—

शृण्वन् सुभद्राणि रथाङ्गपाणे-
र्जन्मानि कर्माणि च यानि लोके।
गीतानि नामानि तदर्थकानि
गायन् विलज्जो विचरेदसङ्गः॥
एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या
जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः।
हसत्यथो रोदिति रौति गाय-
त्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः॥

(११। २। ३९-४०)

'चक्रपाणिभगवान्‌के प्रसिद्ध जन्म, कर्म और गुणोंको सुनकर और उनकी ही लीलाओंके अनुरूप नामोंको लज्जा छोड़कर गान करता हुआ, अनासक्त भावसे संसारमें विचरे। इस प्रकारके निश्चयसे प्रियतम प्रभुके नामकीर्तनमें प्रेम उत्पन्न होता है, तब वह भाग्यवान् पुरुष प्रेमावेशमें कभी खिलखिलाकर हँसता

है, कभी सुबकियाँ भरता है, कभी जोर-जोरसे रोने लगता है, कभी ऊँचे स्वरसे गाने लगता है और कभी उन्मत्तकी भाँति नाच उठता है।'

अपने प्रियतम भगवान्‌के नामकीर्तनमें प्रेमावेशके कारण इस प्रकार निर्लज्ज होकर नाच उठना चाहिये, परन्तु उसमें कहीं भी दिखावट या विषयासक्ति नहीं होनी चाहिये। भगवान्‌का नाम हमें आनन्द नहीं देता, इसका कारण यही है कि वह हमें प्रिय नहीं है और नाम प्रिय इसलिये नहीं है कि हमारा भगवान्‌में प्रेम नहीं है। भगवान्‌में प्रेम होता तो नाम-जप प्यारा लगता। प्यारेकी प्रत्येक चीज प्यारी होती है। कहीं-कहीं तो उससे बढ़कर प्यारी होती है। लौकिक सम्बन्धमें भी हम देखते हैं कि जब किन्हीं लड़के-लड़कीका सम्बन्ध हो जाता है, तब घरमें किसीसे एक-दूसरेका नाम सुनकर या उनके विषयमें कोई बात सुनकर वे अपने हृदयमें एक प्रकारकी गुदगुदी-सी अनुभव करने लगते हैं। प्यारेका वस्त्र, प्यारेका भोजन यहाँतक कि प्यारेकी फटी जूती भी प्यारी होती है। जब लौकिक प्रेमकी ऐसी बात है, तब भगवत्प्रेमके विषयमें तो कहना ही क्या है। शृङ्गवेरपुरमें भरतजी भगवान्‌के शयनके स्थानमें उनके अङ्गसे स्पर्शित 'कुशसाथरी' को देखकर प्रेमानन्दमें मग्न हो गये थे। अक्रूरजी भगवान्‌के चरणचिह्नोंको देखकर तन-मनकी सुधि भूल गये थे। आज भी जब हम व्रजभूमिको देखते हैं, तब स्वतः ही हमें भगवान् श्रीकृष्णकी स्मृति हो आती है और उसमें एक अनोखा आनन्द मिलता है। प्रेम और आनन्दका अविनाभावी सम्बन्ध है, जहाँ प्रेम है वहाँ आनन्द है ही। इसीसे गोपियोंके प्रेमका महत्त्व है। भगवान् श्रीकृष्ण और श्रीमती राधारानी इसी प्रेम और आनन्दके मूर्तिमान् रूप हैं। भगवान्‌का जो आनन्दस्वरूप है वही श्रीमती राधा हैं। राधारानीके प्रेमास्पद भगवान् हैं और भगवान्‌की प्रेमास्पदा श्रीराधा हैं। प्रेमका स्वभाव है **'तत्सुखे सुखित्वम्'** प्रेमास्पदके सुखमें सुखी होना, यही काम और प्रेमका अन्तर है। काममें अपने सुखकी इच्छा है और प्रेममें प्रियतमके सुखकी। राधाजी

श्रीकृष्णको सुख पहुँचानेके लिये ही अवतीर्ण हुई हैं और अपनी सेवासे श्रीकृष्णको आनन्द होता देखकर परम सुखी होती हैं। इधर राधाजीको सुखी देखकर श्रीकृष्णके सुखकी वृद्धि होती है और श्रीकृष्णके सुखकी वृद्धिसे राधाजीका सुख और भी बढ़ जाता है। इस प्रकार एक-दूसरेके आनन्दसे दोनोंका आनन्द उत्तरोत्तर बढ़ता रहता है। यह उत्तरोत्तर बढ़नेवाला आनन्द ही भगवान्‌का नित्यरास है। प्रेममें यही तो विलक्षणता है। इसमें कहीं **'अलम्'** नहीं होता। प्रेमका स्वरूप ही है—**'प्रतिक्षणवर्धमानम्'**। प्रेमास्पदका सुख ही अपना सुख है। चाहे उसका वह सुख प्रेमीके लिये लोक-दृष्टिसे कितना ही कष्टकर क्यों न हो। प्रेमी चातककी भावना है—

जौं घन बरषै समय सिर जौं भरि जनम उदास।
तुलसी या चित चातकहि तऊ तिहारी आस॥
रटत रटत रसना लटी तृषा सूखि गे अंग।
तुलसी चातक प्रेम को नित नूतन रुचि रंग॥
बरषि परुष पाहन पयद पंख करौ टुक टूक।
तुलसी परी न चाहिए चतुर चातकहि चूक॥
चढ़त न चातक चित कबहुँ प्रिय पयोद के दोष।
तुलसी प्रेम पयोधि की तातें नाप न जोष॥

हम जो संसारके दुःखोंसे घबरा उठते हैं इसका कारण क्या है? यही कि हम उनमें प्रेमास्पद भगवान्‌की रुचिको, उनके विधानको नहीं देखते। कठोर आघातमें उनके सुकोमल करकमलका स्पर्श नहीं पाते। परंतु भगवान्‌का प्रेमी भक्त किसी कष्टसे नहीं घबराता, क्योंकि वह प्रत्येक वस्तुमें भगवान्‌का स्पर्श पाता है। वास्तवमें भगवान्‌का प्रेमी भक्त सब कष्टोंसे परे पहुँचा हुआ होता है, उसका जीवन भगवत्सेवामय होता है। वह सेवाको छोड़कर मुक्ति भी नहीं चाहता। मुक्ति तो वह चाहता है जो किसी बन्धनका अनुभव करता हो। भगवत्प्रेमका बन्धन तो सारे बन्धनोंके छूट जानेपर होता

है और इस प्रेमबन्धनसे भक्त कभी मुक्त होना चाहता नहीं। जो इस प्रेमबन्धनसे मुक्ति चाहता है वह भक्त कैसा ? इसीसे कहा गया है—

दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥

(श्रीमद्भा० ३।२९।१३)

अर्थात् 'भक्तजन देनेपर भी मेरी सेवाको छोड़कर मुक्ति आदिको स्वीकार नहीं करते। इस प्रेमसाधनाके सम्बन्धमें गीताके दो श्लोक बड़े महत्त्वके हैं। श्रीभगवान् कहते हैं—

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥

(१०।९-१०)

'जिनका चित्त मुझमें लगा है, जिनके प्राण मुझमें फँसे हैं, जो नित्य आपसमें मेरी ही महत्ताको समझते-समझाते प्रेम करते हैं, जो मेरी ही बात कहते हैं, मुझमें संतुष्ट हैं और निरन्तर मुझमें ही रमण करते हैं, उन निरन्तर मुझमें लगे हुए प्रेमपूर्वक मेरा भजन करनेवाले भक्तोंको मैं अपना वह बुद्धियोग देता हूँ, जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं।'

इन श्लोकोंमें जिस साधनाकी ओर संकेत है, प्रेमियोंके जीवनका वह स्वभाव होता है। इसीसे भगवान्ने भागवतमें इस बातको स्वीकार किया है कि गोपियोंने अपना मन मुझे अर्पण कर दिया, गोपियोंके प्राण मद्गतप्राण हैं, गोपियाँ मेरी ही चर्चा करती हैं, मैं ही एकमात्र उनका इष्ट हूँ, मुझमें ही उनकी एकान्त प्रीति है।

गोपियोंने भगवान्का नाम रखा था—चित्तचोर। क्या मधुर नाम है ? अहा ! हम सबकी भी यही इच्छा रहनी चाहिये कि भगवान् हमारा चित्त चुरा लें। कुछ सज्जनोंको भगवान्के लिये इस 'चोर' शब्दपर बड़ी आपत्ति

है। उनके विचारसे श्रीमद्भागवतमें जो माखन चोरी आदिकी बात है वह भगवान्‌के चरित्रमें कलङ्करूप ही है। पर असलमें बात ऐसी नहीं प्रतीत होती। पहली बात तो यह है, उस समय भगवान् बालकस्वरूप थे, इसलिये उनकी चोरी आदिकी प्रवृत्ति किसी दूषित बुद्धिके कारण नहीं मानी जाती, वह केवल उनकी बाल-सुलभ लीला ही थी; परन्तु वास्तवमें सच पूछा जाय तो क्या कोई यह कह सकता है कि भगवान् श्रीकृष्णने कभी किसी ऐसी गोपीका माखन चुराया था जो ऐसा नहीं चाहती थी। गोपियाँ तो इसीलिये अच्छे-से-अच्छा माखन रखती थीं और ऐसी जगह रखती थीं जहाँ भगवान्‌का हाथ पहुँच सके और वह हृदयकी अत्यन्त उत्कट इच्छाके साथ यह प्रतीक्षा करती रहती थीं कि कब श्यामसुन्दर आवें और हमारी इस समर्पणपद्धतिको स्वीकारकर मित्रोंसहित माखनका भोग लगावें और कब हम उस मधुर झाँकीको देखकर कृतार्थ हों। यही तो उनकी प्रेमसाधना थी। इन गोपियोंके माहात्म्यको कौन कह सकता है, जो निरन्तर चित्तचोरकी श्यामसुन्दर-मूर्तिकी झाँकीके लिये उत्सुक रहती थीं और पलकोंका अदर्शन असह्य होनेके कारण पलक बनानेवाले ब्रह्माजीको कोसा करती थीं। गोपियोंकी इस प्रेमनिष्ठाके विषयमें श्रीमद्भागवत (१०।४४।१५) में कहा है—

या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप-
प्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ ।
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो
धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः ॥

'जो व्रजयुवतियाँ गौओंको दूहते समय, धान आदि कूटते समय, दही बिलोते समय, आँगन लीपते समय, बालकोंको पालना झुलाते समय, रोते हुए बच्चोंको लोरी देते समय, घरोंमें झाड़ू देते समय प्रेमपूर्ण मनसे आँखोंमें आँसू भरकर गद्गद वाणीसे श्रीकृष्णका नाम-गुणगान किया करती हैं उन श्रीकृष्णमें चित्त निवेशित करनेवाली गोपरमणियोंको धन्य है।'

****

इस प्रकार गोपियोंका चित्त हर समय श्रीश्यामसुन्दरमें ही लगा रहता था। घरके सारे धंधोंको करते हुए भी उन्हें अपने प्रियतम श्रीकृष्णकी एक क्षणको भी विस्मृति नहीं होती थी। उद्धवने जब गोपियोंको योगकी शिक्षा दी, तब उस समय उन्होंने उद्धवसे यही कहा कि आप उन्हें योग सिखाइये जिन्हें वियोग हो, हमारा तो श्रीश्यामसुन्दरके साथ नित्यसंयोग है। वे बोलीं—

स्याम तन, स्याम मन, स्याम है हमारो धन,
आठों जाम ऊधो हमें स्याम ही सो काम है।
स्याम हिये, स्याम जिये, स्याम बिनु नाहिं तिये,
आँधेकी-सी लाकरी अधार स्याम नाम है॥
स्याम गति, स्याम मति, स्याम ही है प्रानपति,
स्याम सुखदाई सो भलाई सोभाधाम है।
ऊधो तुम भये बौरे, पाती लैके आये दौरे,
जोग कहाँ राखैं, यहाँ रोम-रोम स्याम है॥

गोपियाँ हर समय सब कुछ श्याममय ही देखती थीं। इस सम्बन्धमें एक प्रसङ्ग है। एक बार कई गोपियाँ मिलकर बैठीं। उस समय यह प्रश्न हुआ कि श्रीकृष्ण श्याम क्यों हैं? माता यशोदा और बाबा नन्द दोनों ही गौरवर्ण हैं। बलदेवजी भी गौरवर्ण हैं, फिर ये साँवले क्यों हुए? इसपर किसीने कुछ कहा और किसीने कुछ। अन्तमें एक व्रजनागरी बोली—

कजरारी अँखियानमें, बसो रहत दिन-रात।
प्रीतम प्यारो हे सखी, ताते साँवर गात॥

'अहो! आठों पहर काजलभरी आँखोंमें रहनेके कारण ही वह काला हो गया है। कितना ऊँचा सिद्धान्त है? ऐसे महात्माको गीता भी परम दुर्लभ बतलाती है—'**वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥**' किंतु यहाँ तो वह सिद्धान्त ही नहीं, प्रत्यक्ष प्रकट स्वरूप था। गोपियोंकी आँखोंमें श्यामके सिवा और किसीका प्रतिबिम्ब ही नहीं पड़ता था। उनकी आँखोंके सामने आते ही सब कुछ साकार श्यामस्वरूप हो जाता था।

बावरी वे अँखियाँ जरि जायँ जो साँवरो छाँड़ि निहारति गोरो।

गोपियोंका भगवान्‌के प्रति प्रियतमभाव था। उनसे बढ़कर '**मच्चित्ता मद्गतप्राणाः**' और कौन हो सकता है ? चित्त भगवन्मय हो जाय, उसपर भगवान्‌का स्वत्व हो जाय। यह नहीं कि हम उसके द्वारा भगवान्‌का भजन करें। उसपर भगवान्‌का ही पूरा अधिकार हो जाना चाहिये। ऐसी स्थिति उन व्रजसुन्दरियोंको ही प्राप्त हुई थी। इसीसे उद्धवको गोपिकाओंके पास भेजते समय भगवान् उनसे कहते हैं—

ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिकाः।
ये त्यक्तलोकधर्माश्च मदर्थे तान्बिभर्म्यहम्॥

(श्रीमद्भा० १०। ४६। ४)

वे करती क्या थीं ? वे जहाँ बैठतीं अपने प्रियतम भगवान्‌की ही चर्चा किया करती थीं। उसीका गान करती थीं, उसीमें संतुष्ट रहती थीं और एकमात्र उसीमें रमती थीं। यह भगवत्प्रेमियोंका सङ्ग बहुत दुर्लभ है। एक सत्सङ्ग वह है जिससे चित्त शुद्ध होता है, फिर शुद्ध चित्तमें ज्ञानोदय होता है और उसके पश्चात् भगवत्प्राप्ति होती है; किंतु यह वह सत्सङ्ग है जिसके लवमात्रके साथ मोक्षकी भी तुलना नहीं होती। श्रीमद्भागवत (१। १८। १३) में कहा है—

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः॥

अर्थात् 'भगवत्प्रेमियोंका जो लवमात्रका सङ्ग है उसके साथ हम स्वर्ग और मोक्षकी भी तुलना नहीं कर सकते, फिर साधारण मानव-भोगोंके विषयमें तो कहना ही क्या है ?' इसीसे भक्तजन कभी मोक्ष नहीं चाहते। उनकी तो यही इच्छा रहती है कि भगवत्प्रेमी मिलकर सदा प्रियतम भगवान्‌की मधुर चर्चा किया करें। यही गोपियोंका भी सत्सङ्ग था।

एक वैष्णव-ग्रन्थमें श्रीमती राधाजी कहती हैं कि 'ऐसा मन होता है,

मेरे लाखों आँखें हों तो श्यामसुन्दरके दर्शनका कुछ आनन्द आवे। लाखों कान हों तो श्यामनामके श्रवणका सुख मिले।' यह कोई कल्पना नहीं है। प्रेम चीज ही ऐसी है। जिस दिन हमें भगवान्‌में प्रेम हो जायगा, उस दिन उनका नाम हमें इतना प्राणप्यारा होगा कि वह हमारे जीवनकी सबसे बढ़कर आवश्यक चीज बन जायगा। जबतक हमारा भगवान्‌में प्रेम नहीं होता तभीतक हमें माला आदिकी आवश्यकता है। प्रेम होनेपर तो प्रियतमके नामोच्चारणमात्रसे हमारी नस-नस नाच उठेगी। हम अपने प्रियतमके प्रेममें इतना उन्मत्त हो जायँगे कि हमारे रोम-रोमसे भगवन्नामकी ध्वनि होने लगेगी। फिर यह जाननेकी इच्छा कभी नहीं होगी कि मैंने कैसा कीर्तन किया। यथार्थ कीर्तनका यही स्वरूप है। मेरा यह कथन नहीं है कि वर्तमान कीर्तन करनेवाले सभीको ऐसी लोकैषणा रहती है। मेरा अभिप्राय केवल यही है कि कीर्तन करते समय हमारा यह लक्ष्य नहीं होना चाहिये कि सुननेवाले लोग हमारे कीर्तनको अच्छा कहें, बल्कि यही लक्ष्य हो कि हम उसमें तन्मय हो जायँ। द्रौपदीके एक नामपर ही भगवान् प्रकट हो गये थे; परन्तु हुए उसी समय थे जब उसने सबका आश्रय छोड़कर परम निर्भरतासे भगवान्‌को पुकारा था।

एक कसौटी और है, भगवन्नामका आश्रय लेनेवालेको यह देखते रहना चाहिये कि हमारे अन्दर दैवी सम्पत्ति बढ़ रही है या नहीं? यदि दैवी सम्पत्तिकी वृद्धि दिखायी न दे तो समझना चाहिये कि हमारा भगवन्नाम-कीर्तन नामापराधसहित है। भगवद्भजनसे दैवी सम्पत्तिकी वृद्धि होनी ही चाहिये। जिस प्रकार भगवत्प्रेमीमें दैवी सम्पत्ति होना अनिवार्य है उसी प्रकार दैवी सम्पत्ति भी बिना भगवत्प्रेमके टिक नहीं सकती। देवर्षि नारदने कहा है कि भगवन्नाममें एक विलक्षण शक्ति है। उससे भगवत्प्रेमकी स्वाभाविक ही वृद्धि होती है और भगवत्प्रेममें दैवी सम्पदाका पूरा प्राकट्य होना ही चाहिये। आजकल ऐसा नहीं होता इससे जान पड़ता है कि हमारे भजनमें

कोई दोष है। श्रीचैतन्यमहाप्रभुमें यह विलक्षण शक्ति बहुत अधिक देखी जाती थी। बड़े-बड़े दिग्गज विद्वान् इसलिये उनके कीर्तनके समीप होकर निकलनेमें डरते थे कि वे कहीं उसी रंगमें न रँग जायँ। और यदि कोई उनके कीर्तनको देख लेता, उनका स्पर्श पा लेता तो वह उन्मत्त हुए बिना रहता नहीं। परंतु महाप्रभुको भी बड़ी सावधानीसे यह शक्ति अर्जन करनी पड़ी थी। एक बार श्रीवासके घर कीर्तन होता था। उस दिन उसमें आनन्दकी स्फूर्ति नहीं हुई। तब श्रीमहाप्रभुजीने कहा, 'देखो यहाँ कोई बाहरका आदमी तो नहीं है।' इधर-उधर देखनेपर एक ब्राह्मणदेवता मिले, जो कीर्तनके प्रेमी नहीं थे। तब सब लोगोंने प्रार्थना करके उन्हें विदा किया। उसके पश्चात् कीर्तन किया गया। तब रस आया। कीर्तनके श्रवणसे वे ब्राह्मणदेवता भी पवित्र हो गये। अतः भक्तको सब प्रकारके कुसङ्गसे बचना चाहिये।

हमलोगोंको भी इस बातका संकल्प करना चाहिये कि हम तन्मय होकर श्रद्धा-विश्वाससहित निष्कामभावसे प्रेमपूर्वक भगवन्नामका जप, स्मरण और कीर्तन करें। निष्कामभाव यहाँतक हो कि हमें तो बस भगवन्नामका जप और कीर्तन ही करना है, यह नहीं देखना है कि इससे भगवान् भी रीझते हैं या नहीं।

═══ ★ ═══

अजामिल-प्रसङ्ग एवं नामकी महिमा

अजामिल जातिका ब्राह्मण था; परन्तु एक शूद्र-जातीय कुलटा स्त्रीमें आसक्त होकर उसीके साथ रहने लगा। उसने अपने छोटे पुत्रका नाम 'नारायण' रखा था। मृत्युके समय यमदूतोंके भयसे उसने अपने पुत्रको ही पुकारा। परन्तु किसी भी निमित्तसे यदि भगवान्‌का नाम अन्त समयमें मुँहसे निकल जाय तो भगवान् उसका कल्याण अवश्य करते हैं; इस विरदका निर्वाह करनेके लिये भगवान्‌ने 'नारायण' नामका उच्चारण होते ही अपने दूत उसके पास भेज दिये और उन्होंने यमदूतोंके हाथसे उसको बचा लिया। यह

****

भगवान्‌की नासमझी नहीं है, उदारता तथा अकारण करुणा करनेका स्वभाव है।

× × × ×

इस प्रसंगमें 'नाम-व्याहरण' का अर्थ नामोच्चारणमात्र ही है। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

यद् गोविन्देति चुक्रोश कृष्णा मां दूरवासिनम्।
ऋणमेतद् प्रवृद्धं मे हृदयान्नापसर्पति॥

'मेरे दूर होनेके कारण द्रौपदीजीने जोर-जोरसे 'गोविन्द-गोविन्द' इस प्रकार करुण क्रन्दन करके मुझे पुकारा। वह ऋण मेरे ऊपर बढ़ गया है और मेरे हृदयसे उसका भार क्षणभरके लिये भी नहीं हटता।'

'नामपदैः' कहनेका यह अभिप्राय है कि भगवान्‌का केवल नाम 'राम-राम', 'कृष्ण-कृष्ण', 'हरि-हरि', 'नारायण-नारायण' अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये—पापोंकी निवृत्तिके लिये पर्याप्त है। **'नमः, नमामि'** इत्यादि क्रिया जोड़नेकी भी कोई आवश्यकता नहीं है। नामके साथ बहुवचनका प्रयोग—भगवान्‌के नाम बहुत-से हैं, किसीका भी सङ्कीर्तन कर लें इस अभिप्रायसे है। एक व्यक्ति सब नामोंका उच्चारण करे, इस अभिप्रायसे नहीं, क्योंकि भगवान्‌के नाम अनन्त हैं, सब नामोंका उच्चारण सम्भव ही नहीं है। तात्पर्य यह है कि भगवान्‌के एक नामका उच्चारण करनेमात्रसे सब पापोंकी निवृत्ति हो जाती है। पूर्ण विश्वास न होने तथा नामोच्चारणके पश्चात् भी पाप करनेके कारण ही उसका अनुभव नहीं होता।

पापकी निवृत्तिके लिये भगवन्नामका एक अंश ही पर्याप्त है, जैसे 'राम' का 'रा' इसने तो सम्पूर्ण नामका उच्चारण कर लिया। मरते समयका अर्थ ठीक मरनेका क्षण ही नहीं है; क्योंकि मरनेके क्षण जैसे कृच्छ्र-चान्द्रायण आदि करनेके लिये विधि नहीं हो सकती, वैसे नामोच्चारणकी भी नहीं है। इसलिये **'म्रियमाण'** शब्दका यह अभिप्राय है कि अब आगे इससे कोई पाप होनेकी सम्भावना नहीं है।

वस्तुकी स्वाभाविक शक्ति इस बातकी प्रतीक्षा नहीं करती कि यह मुझपर श्रद्धा रखता है कि नहीं, जैसे अग्नि या अमृत।

हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः।
अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः॥

'दुष्टचित्त मनुष्यके द्वारा स्मरण किये जानेपर भी भगवान् श्रीहरि पापोंको हर लेते हैं। अनजानेमें या अनिच्छासे स्पर्श करनेपर भी अग्नि जलाती ही है।'

भगवान्‌के नामका उच्चारण केवल पापोंको ही निवृत्त करता है, इसका और कोई फल नहीं है, यह धारणा भ्रमपूर्ण है, क्योंकि कहा है—

'भगवन्नाम मोक्षका भी साधन है। मोक्षके साथ-ही-साथ यह धर्म, अर्थ और कामका भी साधन है' क्योंकि ऐसे अनेक प्रमाण मिलते हैं; जिनमें त्रिवर्ग-सिद्धिका भी नाम ही कारण बतलाया गया है—

न गङ्गा न गया सेतुर्न काशी न च पुष्करम्।
जिह्वाग्रे वर्तते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम्॥
ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः।
अधीतास्तेन येनोक्तं हरिरित्यक्षरद्वयम्॥
अश्वमेधादिभिर्यज्ञैर्नरमेधैः सदक्षिणैः।
यजितं तेन येनोक्तं हरिरित्यक्षरद्वयम्॥
प्राणप्रयाणपाथेयं संसारव्याधिभेषजम्।
दुःखक्लेशपरित्राणं हरिरित्यक्षरद्वयम्॥

'जिसकी जिह्वाके नोकपर 'हरि' ये दो अक्षर बसते हैं, उसे गङ्गा, गया, सेतुबन्ध, काशी और पुष्करकी कोई आवश्यकता नहीं, अर्थात् उनकी यात्रा, स्नान आदिका फल भगवन्नामसे ही मिल जाता है। जिसने 'हरि' इन दो अक्षरोंका उच्चारण कर लिया, उसने ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेदका अध्ययन कर लिया। जिसने 'हरि' ये दो अक्षर उच्चारण किये,

उसने दक्षिणाके सहित अश्वमेध आदि यज्ञोंके द्वारा यजन कर लिया। 'हरि' ये दो अक्षर मृत्युके पश्चात् परलोकके मार्गमें प्रयाण करनेवाले प्राणोंको पाथेय (मार्गके लिये भोजनकी सामग्री) हैं, संसाररूप रोगके लिये सिद्ध औषध हैं और जीवनके दुःख और क्लेशोंके लिये परित्राण हैं।'

इन वचनोंसे यह सिद्ध होता है कि भगवन्नाम अर्थ, धर्म, काम—इन तीन वर्गोंका भी साधक है। यह बात 'हरि', 'नारायण' आदि कुछ विशेष नामोंके सम्बन्धमें नहीं है, प्रत्युत सभी नामोंके सम्बन्धमें है, क्योंकि स्थान-स्थानपर यह बात सामान्यरूपसे कही गयी है कि अनन्तके नाम, विष्णुके नाम, हरिके नाम इत्यादि। भगवान्‌के सभी नामोंमें एक ही शक्ति है।

नाम-सङ्कीर्तन आदिमें वर्ण-आश्रमका भी नियम नहीं है—

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रान्त्यजादयः।
यत्र तत्रानुकुर्वन्ति विष्णोर्नामानुकीर्तनम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तास्तेऽपि यान्ति सनातनम्॥

'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री, शूद्र, अन्त्यज आदि जहाँ-तहाँ विष्णु-भगवान्‌के नामका अनुकीर्तन करते रहते हैं, वे भी समस्त पापोंसे मुक्त होकर सनातन परमात्माको प्राप्त होते हैं।'

नाम-सङ्कीर्तनमें देश-काल आदिके नियम भी नहीं हैं। यथा—

न देशकालनियमः शौचाशौचविनिर्णयः।
परं संकीर्तनादेव राम रामेति मुच्यते॥

× × × ×

गच्छंस्तिष्ठन्स्वपन्वापि पिबन्भुञ्जञ्जपंस्तथा।
कृष्ण कृष्णेति संकीर्त्य मुच्यते पापकञ्चुकात्॥

× × × ×

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

'देश-कालका नियम नहीं है, शौच-अशौच आदिका निर्णय करनेकी भी आवश्यकता नहीं है। केवल 'राम, राम' यह संकीर्तन करनेमात्रसे जीव मुक्त हो जाता है।' चलते-फिरते, खड़े रहते, सोते, खाते-पीते और जप करते हुए भी 'कृष्ण, कृष्ण' ऐसा संकीर्तन करके मनुष्य पापके केंचुलसे छूट जाता है। × × × अपवित्र हो या पवित्र— 'सभी अवस्थाओंमें (चाहे किसी भी अवस्थामें) जो कमलनयन भगवान्‌का स्मरण करता है, वह बाहर-भीतर पवित्र हो जाता है।'

कृष्णेति मङ्गलं नाम यस्य वाचि प्रवर्तते।
भस्मीभवन्ति सद्यस्तु महापातककोटयः॥
सर्वेषामपि यज्ञानां लक्षणानि व्रतानि च।
तीर्थस्नानानि सर्वाणि तपांस्यनशनानि च॥
वेदपाठसहस्राणि प्रादक्षिण्यं भुवः शतम्।
कृष्णनामजपस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥

'जिसकी जिह्वापर 'कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण' यह मङ्गलमय नाम नृत्य करता रहता है, उसकी कोटि-कोटि महापातक-राशि तत्काल भस्म हो जाती है। सारे यज्ञ, लाखों व्रत, सर्वतीर्थ-स्नान, तप, अनेकों उपवास, हजारों वेद-पाठ, पृथ्वीकी सैकड़ों प्रदक्षिणा कृष्ण-नाम-जपके सोलहवें हिस्सेके बराबर भी नहीं हो सकती।'

भगवन्नामके कीर्तनमें ही यह फल हो, सो बात नहीं। उसके श्रवण और स्मरणमें भी वही फल है। दशम स्कन्धके अन्तमें कहेंगे, 'जिनके नामका स्मरण और उच्चारण अमङ्गलघ्न है।' शिवगीता और पद्मपुराणमें कहा है—

आश्चर्ये वा भये शोके क्षते वा मम नाम यः।
व्याजेन वा स्मरेद्यस्तु स याति परमां गतिम्॥
प्रयाणे चाप्रयाणे च यन्नाम स्मरतां नृणाम्।
सद्यो नश्यति पापौघो नमस्तस्मै चिदात्मने॥

'भगवान् कहते हैं आश्चर्य, भय, शोक, क्षत (चोट लगने) आदिके अवसरपर जो मेरा नाम बोल उठता है या किसी व्याजसे स्मरण करता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है। मृत्यु या जीवन—चाहे जब कभी भगवान्‌का नाम-स्मरण करनेवाले मनुष्योंकी पाप-राशि तत्काल नष्ट हो जाती है। उन चिदात्मा प्रभुको नमस्कार है।'

इतिहासोत्तम (महाभारत)-में कहा गया है—

श्रुत्वा नामानि तत्रस्थास्तेनोक्तानि हरेर्द्विज।
नारका नरकान्मुक्ताः सद्य एव महामुने॥

'महामुनि ब्राह्मणदेव! भक्तराजके मुखसे नरकमें रहनेवाले प्राणियोंने श्रीहरिके नामका श्रवण किया और वे तत्काल नरकसे मुक्त हो गये।'

यज्ञ-यागादिरूप धर्म अपने अनुष्ठानके लिये जिस पवित्र देश, काल, पात्र, शक्ति, सामग्री, श्रद्धा, मन्त्र, दक्षिणा आदिकी अपेक्षा रखता है, इस कलियुगमें उसका सम्पन्न होना अत्यन्त कठिन है। भगवन्नाम-संकीर्तनके द्वारा उसका फल अनायास ही प्राप्त किया जा सकता है। भगवान् शंकर पार्वतीके प्रति कहते हैं—

ईशोऽहं सर्वजगतां नाम्नां विष्णोर्हि जापकः।
सत्यं सत्यं वदाम्येव हरेर्नान्या गतिर्नृणाम्॥

'सम्पूर्ण जगत्‌का स्वामी होनेपर भी मैं विष्णुभगवान्‌के नामका ही जप करता हूँ। मैं तुमसे सत्य-सत्य कहता हूँ, भगवान्‌को छोड़कर जीवोंके लिये अब कर्मकाण्ड आदि कोई भी गति नहीं है।' श्रीमद्भागवतमें ही यह बात आगे आनेवाली है कि सत्ययुगमें ध्यानसे, त्रेतामें यज्ञसे और द्वापरमें अर्चा-पूजासे जो फल मिलता है, कलियुगमें वह केवल भगवन्नामसे मिलता है। और भी है कि कलियुग दोषोंका निधि है; परन्तु इसमें एक महान् गुण यह है कि श्रीकृष्ण-संकीर्तनमात्रसे ही जीव बन्धनमुक्त होकर परमात्माको प्राप्त कर लेता है।

इस प्रकार एक बारके नामोच्चारणकी भी अनन्त महिमा शास्त्रोंमें कही गयी है। यहाँ मूल प्रसंगमें ही—'**एकदापि**' कहा गया है; '**सकृदुच्चरितम्**' का उल्लेख किया जा चुका है। बार-बार जो नामोच्चारणका विधान है, वह आगे और पाप न उत्पन्न हो जायँ, इसके लिये है। ऐसे भी वचन मिलते हैं कि भगवान्‌के नामका उच्चारण करनेसे भूत, वर्तमान और भविष्यके सारे ही पाप भस्म हो जाते हैं। यथा—

वर्तमानं च यत् पापं यद् भूतं यद् भविष्यति।
तत्सर्वं निर्दहत्याशु गोविन्दानलकीर्तनम्॥

'फिर भी भगवत्प्रेमी जीवको पापोंके नाशपर अधिक दृष्टि नहीं रखनी चाहिये; उसे तो भक्ति-भावकी दृढ़ताके लिये भगवान्‌के चरणोंमें अधिकाधिक प्रेम बढ़ता जाय, इस दृष्टिसे अहर्निश नित्य-निरन्तर भगवान्‌के मधुर-मधुर नाम जपते जाना चाहिये। जितनी अधिक निष्कामता होगी, उतनी-ही-उतनी नामकी पूर्णता प्रकट होती जायगी, अनुभवमें आती जायगी।'

अनेक तार्किकोंके मनमें यह कल्पना उठती है कि नामकी महिमा वास्तविक नहीं है, अर्थवादमात्र है। उनके मनमें यह धारणा तो हो जाती है कि शराबकी एक बूँद भी पतित बनानेके लिये पर्याप्त है, परन्तु यह विश्वास नहीं होता कि भगवान्‌का एक नाम भी परम कल्याणकारी है। शास्त्रोंमें भगवन्नाम-महिमाको अर्थवाद समझना पाप बतलाया गया है—

पुराणेष्वर्थवादत्वं ये वदन्ति नराधमाः।
तैरर्जितानि पुण्यानि तद्वदेव भवन्ति हि॥

× × × ×

मन्नामकीर्तनफलं विविधं निशम्य
न श्रद्दधाति मनुते यदुतार्थवादम्।
यो मानुषस्तमिह दुःखचये क्षिपामि
संसारघोरविविधार्तिनिपीडिताङ्गम्॥

× × × ×

अर्थवादं हरेर्नाम्नि सम्भावयति यो नरः।
स पापिष्ठो मनुष्याणां नरके पतति स्फुटम्॥

'जो नराधम पुराणोंमें अर्थवादकी कल्पना करते हैं, उनके द्वारा उपार्जित पुण्य वैसे ही हो जाते हैं।'

× × × ×

'जो मनुष्य मेरे नाम-कीर्तनके विविध फल सुनकर उसपर श्रद्धा नहीं करता और उसे अर्थवाद मानता है, उसको संसारके विविध घोर तापोंसे पीड़ित होना पड़ता है और उसे मैं अनेकों दुःखोंमें डाल देता हूँ।' × × × 'जो मनुष्य भगवान्के नाममें अर्थवादकी सम्भावना करता है वह मनुष्योंमें अत्यन्त पापी है और उसे नरकमें गिरना पड़ता है।'

★

श्रीकृष्ण-नाम-महिमाष्टक

एक बहुत सुन्दर श्रीकृष्ण-नाम-महिमाष्टक है—उसे नीचे अनुवाद-सहित दिया जा रहा है।

निखिलश्रुतिमौलिरत्नमाला-
द्युतिनीराजितपादपङ्कजान्त।
अयि मुक्तकुलैरुपास्यमानं
परितस्त्वां हरिनाम संश्रयामि॥

'सम्पूर्ण उपनिषद्रूप रत्नमालाकी कान्तिके द्वारा तुम्हारे चरणकमलोंका नखरूप प्रान्तभाग नीराजित हो रहा है और संसारसे मुक्त (नारद-सनकादि) मुनि तुम्हारी उपासनामें लगे हैं। इस प्रकारके हे श्रीहरिनाम ! मैं तुम्हारा आश्रय लेता हूँ।'

जय नामधेय मुनिवृन्दगेय
जनरञ्जनाय परमक्षराकृते।

त्वमनादरादपि मनागुदीरितं
निखिलोग्रपापपटली विलुम्पसि ॥

'मुनिवृन्द सदा तुम्हारा गान करते हैं और जनसमूहका सच्चा मनोरञ्जन करनेके लिये तुमने परम अक्षररूप शरीर धारण कर रखा है; अनादर (अश्रद्धा)-से भी कोई यदि तुम्हारा थोड़ा भी उच्चारण करता है तो तुम्हारी कृपासे उसके सम्पूर्ण उग्र पाप भी विलुप्त हो जाते हैं। अतएव हे नामधेय ! तुम्हारी जय हो।' (तुम इसी प्रकार सबकी पापराशिका नाश करते हुए सदा उत्कर्षको प्राप्त करते रहो।)

यदाभासोऽप्युद्यन् कवलितभवध्वान्तविभवो
दृशं तत्त्वान्धानामपि दिशति भक्तिप्रणयिनीम्।
जनस्तस्योदात्तं जगति भगवन्नाम तरणे
कृती ते निर्वक्तुं क इह महिमानं प्रभवति ॥

'हे भगवन्नाम-सूर्य ! तुम किसी भी संकेतसे यदि उच्चारित हो जाते हो तो आवागमनरूप अन्धकारका ग्रास करके तत्त्व-दृष्टिसे अंधे मनुष्योंको भी श्रीकृष्णभक्तिको प्राप्त करानेवालोंको दृष्टि दे देते हो; अतएव इस जगत्में ऐसा कौन विद्वान् पुरुष होगा, जो तुम्हारी उदात्त महिमाका वर्णन कर सके ?'

यद् ब्रह्मसाक्षात्कृतिनिष्ठयापि
विनाशमायाति विना न भोगैः।
अपैति नाम स्फुरणेन तत्ते
प्रारब्धकर्मेति विरौति वेदः ॥

'जो प्रारब्धकर्म ब्रह्म-साक्षात्कारकी निष्ठा (दृढ़ स्थिति) हो जानेपर भी भोग किये बिना कभी नष्ट नहीं होते, वेद कहते हैं कि वे ही सब पाप-पुण्यके बुरे-भले फलरूप प्रारब्धकर्म, हे नामदेवता ! जीभपर तुम्हारा स्फुरण होते ही नष्ट हो जाते हैं।'

अघदमनयशोदानन्दनौ नन्दसूनो
कमलनयन गोपीचन्द्र वृन्दावनेन्द्र।

प्रणतकरुणकृष्णावित्यनेकस्वरूपे

त्वयि मम रुचिरुच्चैर्वर्द्धतां नामधेय ॥

'अघदमन, यशोदानन्दन, नन्दसुत, कमलनयन, गोपीचन्द्र, वृन्दावनेन्द्र, प्रणतकरुण, कृष्ण—इस प्रकार अनेक स्वरूपोंमें तुम्हारा प्राकट्य हो रहा है। हे नामधेय ! तुम्हारे प्रति मेरी रुचि सदा बढ़ती रहे।'

वाच्यं वाचकमित्युदेति भवतो नाम स्वरूपद्वयं
पूर्वस्मात् परमेव हन्त करुणं तत्रापि जानीमहे।
यस्तस्मिन् विहितापराधनिवहः प्राणी समन्ताद्भवे-
दास्येनेदमुपास्य सोऽपि हि सदानन्दाम्बुधौ मज्जति ॥

'हे नामभगवन् ! वाच्य अर्थात् विभु, सच्चिदानन्दात्मक श्रीविग्रह और वाचक अर्थात् श्रीकृष्ण-राम-गोविन्द आदि वर्णात्मक—आपके दो स्वरूप इस जगत्में सुशोभित हैं; परंतु इनमेंसे हमलोग विभु सच्चिदानन्दस्वरूपकी अपेक्षा वाचक नाम-स्वरूपको ही दयालु जानते हैं; क्योंकि कोई प्राणी यदि विभुस्वरूपके सब ओरसे अपराध-पर-अपराध करता है तो मुखसे (उच्चारणमात्रके द्वारा) नामस्वरूपकी उपासना करके वह भी अपराधसे रहित होकर सदा आनन्द-सागरमें निमग्न हो जाता है।'

सूदिताश्रितजनार्तिराशये

रम्यचिद्घनसुखस्वरूपिणे ।

नाम गोकुलमहोत्सवाय ते

कृष्ण पूर्णवपुषे नमो नमः ॥

'हे नामरूप कृष्ण ! तुम आश्रितजनोंके दुःखोंका नाश करते हो; भक्तोंके हृदयमें रमणीय चिद्घन आनन्दरूपसे रहते हो तथा गोकुलवासियोंके लिये मूर्तिमान् उत्सवस्वरूप ही हो और अपने माधुर्यादिसे परिपूर्ण विग्रह हो। तुमको बार-बार नमस्कार है।'

नारदवीणोज्जीवन सुधोर्मिनिर्यासमाधुरीपूर।
त्वं कृष्णनाम काम स्फुर मे रसने रसेन सदा ॥

'हे कृष्ण-नाम ! तुम नारदकी वीणाके जीवन हो, अमृत-तरंगोंके साररूप माधुर्यसे पूर्ण हो। तुम मेरी रसना (जीभ)-पर सदा रसमय होकर स्फुरित होते रहो—प्रेमोल्लासके साथ परमानन्दसुधाका अनुभव करती हुई मेरी जीभ सदा तुमको अपने अग्रभागपर नचाती रहे।'

यह एक 'नाम-महिमाष्टक' है। ऐसे ही और भी नाम-महिमाष्टक हैं।

श्रीराधा-नामकी महिमा

परमप्रिय श्रीराधा-नामकी महिमाका स्वयं श्रीकृष्णने यों गान किया है—

'रा' शब्दं कुर्वतस्त्रस्तो ददामि भक्तिमुत्तमाम्।
'धा' शब्दं कुर्वतः पश्चाद् यामि श्रवणलोभतः॥

'जिस समय मैं किसीके मुखसे 'रा' सुन लेता हूँ, उसी समय उसे अपनी उत्तम भक्ति—प्रेम दे देता हूँ और 'धा' शब्दका उच्चारण करनेपर तो मैं प्रियतमा श्रीराधाका नाम-श्रवण करनेके लोभसे उसके पीछे-पीछे चलने लगता हूँ।'

× × × ×

श्रुतियाँ इनके निम्नाङ्कित नामोंका गान करती हैं—

राधा, रासेश्वरी, रम्या, कृष्णमन्त्राधिदेवता, सर्वाद्या, सर्ववन्द्या, वृन्दावन-विहारिणी, वृन्दाराध्या, रमा, अशेषगोपीमण्डलपूजिता, सत्या, सत्यपरा, सत्यभामा, श्रीकृष्णवल्लभा, वृषभानुसुता, गोपी, मूलप्रकृति, ईश्वरी, गान्धर्वा, राधिका, आरम्या, रुक्मिणी, परमेश्वरी, परात्परतरा, पूर्णा, पूर्णचन्द्रनिभानना, भुक्तिमुक्तिप्रदा, भवव्याधिविनाशिनी।

—इन अट्ठाईस नामोंका जो पाठ करते हैं, वे जीवन्मुक्त हो जाते हैं—ऐसा भगवान् श्रीब्रह्माजीने कहा है। (श्रीराधिकोपनिषद्)

× × × ×

श्रीदेवीभागवतमें श्रीराधाजीके मन्त्र, उपासना, स्वरूप और भगवान् नारायणके द्वारा उनकी स्तुतिका वर्णन है, जो संक्षेपमें इस प्रकार है—

भगवती श्रीराधाका वाञ्छाचिन्तामणि सिद्ध मन्त्र है—**'ॐ ह्रीं श्रीराधायै स्वाहा'**। असंख्य मुख और असंख्य जिह्वावाले भी इस मन्त्रका माहात्म्य वर्णन करनेमें असमर्थ हैं। मूल-प्रकृति श्रीराधाके आदेशसे सर्वप्रथम भगवान् श्रीकृष्णने भक्तिपूर्वक इस मन्त्रका जप किया था और फिर उन्होंने विष्णुको, विष्णुने विराट् ब्रह्माको, ब्रह्माने धर्मको और धर्मने मुझ नारायणको इसका उपदेश किया। तबसे मैं निरन्तर इस मन्त्रका जप करता हूँ, इसीसे ऋषिगण मेरा सम्मान करते हैं। ब्रह्मा आदि समस्त देवता नित्य प्रसन्नचित्तसे श्रीराधाकी उपासना करते हैं।

कृष्णार्चायां नाधिकारो यतो राधार्चनं विना।
वैष्णवैः सकलैस्तस्मात् कर्तव्यं राधिकार्चनम्॥
कृष्णप्राणाधिका देवी तदधीनो विभुर्यतः।
रासेश्वरी तस्य नित्यं तया हीनो न तिष्ठति।
राध्नोति सकलान् कामांस्तस्माद् राधेति कीर्तिता॥

(श्रीदेवीभागवत ९। ५०। १६—१८)

''क्योंकि श्रीराधाकी पूजा किये बिना मनुष्य श्रीकृष्णकी पूजाके लिये अनधिकारी माना जाता है, इसलिये वैष्णवमात्रका कर्तव्य है कि वे श्रीराधाकी पूजा अवश्य करें। श्रीराधा श्रीकृष्णकी प्राणाधिका देवी हैं। कारण, भगवान् इनके अधीन रहते हैं। ये नित्य-रासेश्वरी भगवान्‌के रासकी नित्य-स्वामिनी हैं। इनके बिना भगवान् रह ही नहीं सकते। ये सम्पूर्ण कामनाओंको सिद्ध करती हैं, इसीसे ये 'राधा' नामसे कही जाती हैं।''

× × × ×

श्रीराधारानीके प्रसिद्ध सोलह नाम पुराणोंमें आते हैं। यहाँ हम उन नामोंका जयघोष करें तथा उनका अर्थ समझनेका किञ्चित् प्रयास करें—

जय जय 'राधा' 'रासेश्वरि', जय 'रासवासिनी', जय जय जय।
'रसिकेश्वरी', जयति जय 'कृष्णप्राणाधिका' नित्य जय जय॥

'कृष्णस्वरूपिणि', 'कृष्णप्रिया', जय 'परमानन्दरूपिणी' जय।
'कृष्ण-वाम-अँग-सम्भूता', जय 'कृष्णा' 'वृन्दा' जय जय जय॥
'वृन्दावनी' जयति, जय 'वृन्दावनविनोदिनी', जय जय जय।
'चन्द्रावति', 'शतचन्द्रनिभमुखी', 'चन्द्रकान्ता' जय जय जय॥

श्रीराधाजीके राधा, रासेश्वरी, रासवासिनी, रसिकेश्वरी, कृष्णप्राणाधिका, कृष्णप्रिया, कृष्णस्वरूपिणी, कृष्णा, परमानन्दरूपिणी, कृष्णवामाङ्गसम्भूता, वृन्दावनी, वृन्दा, वृन्दावनविनोदिनी, चन्द्रावती, चन्द्रकान्ता और शतचन्द्रप्रभानना—ये सोलह नाम प्रसिद्ध हैं। इन्हें साररूप मानते हैं।

ये सम्पूर्णरूपसे सहज ही कृतकृत्य हैं, सिद्ध हैं, इससे उनका नाम, 'राधा' है। अथवा 'रा' का अर्थ है देना और 'धा' का अर्थ है—निर्वाण। अतः वे मोक्ष—निर्वाण देनेवाली हैं, इससे राधा कहलाती हैं। वे रासेश्वरी रासेश्वर श्यामसुन्दरकी अर्धाङ्गिनी हैं अथवा रासकी सारी लीला उन्हींके मधुरतम ऐश्वर्यका प्रकाश है, इसलिये वे 'रासेश्वरी' कहलाती हैं। नित्य-रासमें उनका नित्य निवास है, अतएव उनको 'रासवासिनी' कहते हैं। वे समस्त रसिक देवियोंकी सर्वश्रेष्ठ स्वामिनी हैं, अथवा रसिकशिरोमणि श्रीकृष्ण उनको अपनी स्वामिनी मानते हैं। इसलिये वे 'रसिकेश्वरी' कहलाती हैं। सर्वलोकमहेश्वर, सर्वमय और सर्वातीत परमात्मा श्रीकृष्णको वे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं, इसलिये उन्हें 'कृष्णप्राणाधिका' कहा जाता है। वे श्रीकृष्णकी परम वल्लभा हैं या श्रीकृष्ण उन्हें सदा परम प्रिय हैं, अतएव उन्हें 'कृष्णप्रिया' कहते हैं। वे स्वरूपतः—तत्त्वतः श्रीकृष्णसे सर्वथा अभिन्न हैं, समग्ररूपसे श्रीकृष्णके समान हैं एवं लीलासे ही वे श्रीकृष्णका यथार्थ स्वरूप धारण करनेमें भी समर्थ हैं, इसलिये वे 'कृष्णस्वरूपिणी' कहलाती हैं। वे परम सती एक समय श्रीकृष्णके वाम अर्धाङ्गसे प्रकट हुई थीं, इसलिये उनको 'कृष्णवामाङ्गसम्भूता' कहते हैं। भगवत्स्वरूपा परमानन्दकी राशि ही उन परम सतीशिरोमणिके रूपमें मूर्तिमती हुई हैं तथा

भगवान्‌की अभिन्न परम-आनन्द स्वरूपा आह्लादिनी शक्ति हैं, इसीसे उनका एक नाम 'परमानन्दरूपिणी' प्रसिद्ध है। 'कृष्' धातु मोक्षवाचक है, 'न' उत्कृष्टका द्योतक है और 'आ' देनेवालीका बोधक है; इस प्रकार वे श्रेष्ठ मोक्ष प्रदान करती हैं अथवा वे श्रीकृष्णकी ही तत्त्वतः नित्य अभिन्न परन्तु लीलासे भिन्नस्वरूपता हैं। अतः उनको 'कृष्णा' कहते हैं। 'वृन्द' शब्द सखियोंके समुदायका वाचक है और 'अ' सत्ताका बोधक है। सखीवृन्द उनका है—वे सखीवृन्दकी स्वामिनी हैं, इसलिये 'वृन्दा' कहलाती हैं। वृन्दावन उनकी मधुर लीला-स्थली है। विहार-भूमि है, इससे उन्हें 'वृन्दावनी' कहा जाता है। वृन्दावनमें उनका विनोद (मनोरञ्जन) होता है अथवा उनके कारण वृन्दावनको आमोद प्राप्त होता है, इसीलिये वे 'वृन्दावन-विनोदिनी' कहलाती हैं। उनकी नखावली चन्द्रमाओंकी पंक्तिके समान सुशोभित है अथवा उनका मुख पूर्णचन्द्रके सदृश है, इससे उनको 'चन्द्रावती' कहते हैं। उनके दिव्य शरीरपर अनन्त चन्द्रमाओंकी-सी कान्ति सदा-सर्वदा जगमगाती रहती है, इसीलिये वे 'चन्द्रकान्ता' कही जाती हैं और उनके मुखपर नित्य-निरन्तर सैकड़ों चन्द्रमाओंकी ज्योत्स्ना झलमल करती रहती है, इसीसे उनका नाम है 'शतचन्द्रनिभानना'।

× × × ×

श्रीकृष्ण कहते हैं—राधा मुझे इतनी अधिक प्रिय हैं कि—

राधासे भी लगता मुझको अधिक मधुर प्रिय राधा-नाम।
'राधा' शब्द कानमें पड़ते ही खिल उठती हिय-कली तमाम॥
मूल्य नित्य निश्चित है मेरा प्रेम-प्रपूरित राधा-नाम।
चाहे जो खरीद ले, ऐसा, मुझे सुनाकर राधा-नाम॥
नारायण, शिव, ब्रह्मा, लक्ष्मी, दुर्गा, वाणी मेरे रूप।
प्राण-समान सभी प्रिय मेरे, सबका मुझमें भाव अनूप॥
पर राधा प्राणाधिक मेरी अतिशय, प्रिय प्रियजन सिरमौर।
राधा-सा कोई न कहीं है मेरा प्राणाधिक प्रिय और॥

अन्य सभी ये देव, देवियाँ बसते हैं नित मेरे पास।
प्रिया राधिकाका है मेरे वक्षःस्थलपर नित्य निवास॥

—उन राधासे भी उनका 'राधा' नाम मुझे अधिक मधुर और प्यारा लगता है। 'राधा' शब्द कानमें पड़ते ही मेरे हृदयकी सम्पूर्ण कलियाँ खिल उठती हैं। प्रेमसे परिपूरित 'राधा' नाम मेरा नित्य निश्चित—सदा बँधा-बँधाया मूल्य है। कोई भी ऐसा प्रेम-परिपूर्ण राधा-नाम सुनाकर मुझे खरीद ले सकता है। नारायण, शिव, ब्रह्मा, लक्ष्मी, दुर्गा, सरस्वती—ये सब मेरे ही रूप हैं। ये सभी मुझे प्राणोंके समान प्रिय हैं और इन सबका भी मुझमें बड़ा अनुपम भाव है। परन्तु राधा तो मुझे प्राणोंसे भी अतिशय अधिक प्यारी है। वह समस्त प्रिय प्रेमीजनोंकी मुकुटमणि है। राधाके सदृश प्राणाधिकप्रिय दूसरा कहीं कोई भी नहीं है। ये अन्यान्य सभी देव-देवियाँ नित्य मेरे समीप रहती हैं, पर मेरी प्रियतमा राधिका तो सदा-सर्वदा मेरे वक्षःस्थलपर ही निवास करती है।

इस 'राधा' नामका अर्थ और महत्त्व बतलाते हुए शास्त्र कहते हैं—

रेफो हि कोटिजन्माघं कर्मभोगं शुभाशुभम्।
आकाराद् गर्भवासं च मृत्युं च रोगमुत्सृजेत्॥
धकार आयुषो हानिमाकारो भवबन्धनम्।
श्रवणस्मरणोक्तिभ्यः प्रणश्यन्ति न संशयः॥

'राधा' नामके पहले अक्षर 'र' का उच्चारण करते ही करोड़ों जन्मोंके संचित पाप और शुभ-अशुभ कर्मोंके भोग नष्ट हो जाते हैं। आकार (ा) के उच्चारणसे गर्भवास (जन्म), मृत्यु और रोग आदि छूट जाते हैं। 'ध' के उच्चारणसे आयुकी वृद्धि होती है और आकार (ा) के उच्चारणसे जीव भव-बन्धनसे मुक्त हो जाता है। इस प्रकार 'राधा' नामके श्रवण, स्मरण और उच्चारणसे कर्मभोग, गर्भवास और भव-बन्धनादि एक ही साथ नष्ट हो जाते हैं—इसमें कोई संदेह नहीं—

रेफो हि निश्चलां भक्तिं दास्यं कृष्णपदाम्बुजे।
सर्वेप्सितं सदानन्दं सर्वसिद्ध्योघमीश्वरम्॥
धकारः सहवासं च तत्तुल्यकालमेव च।
ददाति सार्ष्टिसारूप्यं तत्त्वज्ञानं हरेः समम्॥
आकारस्तेजसां राशिं दानशक्तिं हरे यथा।
योगशक्तिं योगमतिं सर्वकालं हरिस्मृतिम्॥
श्रुत्युक्तिस्मरणाद्योगान्मोहजालं च किल्बिषम्।
रोगशोकमृत्युयमा वेपन्ते नात्र संशयः॥

'राधा' नामके अन्तर्गत राकारके उच्चारणसे मनुष्य श्रीकृष्ण-चरण-कमलमें निश्चला भक्ति और भगवान्‌के दासत्वको प्राप्त करके समस्त अभिलषित पदार्थ, सदानन्द और समस्त सिद्धियोंकी खान ईश्वरकी प्राप्ति करता है तथा धकारका उच्चारण उसे सार्ष्टि, सारूप्य, भगवान्‌के स्वरूपका तत्त्वज्ञान और समानकाल—उनके साथ रहनेकी स्थिति प्रदान करता है। आकार उच्चारित होनेपर शिवके समान औढर-दानीपन, तेजोराशि, योगशक्ति, योगमें मति और सर्वकालमें श्रीहरिकी स्मृति प्राप्त होती है। इस प्रकार 'राधा' नामके श्रवण, उच्चारण, स्मरण और संयोगसे मोह-जाल तथा पापराशिका नाश हो जाता है और रोग-शोक-मृत्यु तथा यमराज उसके भयसे काँपने लगते हैं।

'रा' शब्दोच्चारणादेव स्फीतो भवति माधवः।
'धा' शब्दोच्चारणात् पश्चाद्धावत्येव ससम्भ्रमः॥

'रा' शब्दका उच्चारण करनेपर उसे सुनते ही माधव हर्षसे फूल जाते हैं और 'धा' शब्दका उच्चारण करनेपर बड़े सत्कारके साथ उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगते हैं।

'रा' शब्दोच्चारणाद्भक्तो राति मुक्तिं सुदुर्लभाम्।
'धा' शब्दोच्चारणाद्दुर्गे धावत्येव हरेः पदम्॥

'रा' इत्यादानवचनो 'धा' च निर्वाणवाचकः।
यतोऽवाप्नोति मुक्तिं च सा च राधा प्रकीर्तिता॥

'रा' शब्दके उच्चारणसे भक्त परम दुर्लभ मुक्ति-पदको प्राप्त करता है और 'धा' शब्दके उच्चारणसे निश्चय ही वह दौड़कर श्रीहरिके धाममें पहुँच जाता है।

'रा' का अर्थ है 'पाना' और 'धा' का अर्थ है निर्वाण—मोक्ष, भक्तजन उनसे निर्वाण—मुक्ति प्राप्त करते हैं, इसलिये उन्हें 'राधा' कहा गया है।

—★—

नाम-जप करनेकी विधि

यद्यपि परब्रह्म परमात्मा ॐकारस्वरूप भगवान् श्रीशिव और भगवान् श्रीविष्णुके नाम-स्मरणकी अनन्त महिमा वेद-शास्त्रोंमें विस्तारपूर्वक वर्णित है। तथापि कोई-कोई यह कहा ही करते हैं कि 'भाई ! हम नित्य ईश्वरका स्मरण करते हैं, फिर भी हमें इसका कुछ भी फल मिलता प्रतीत नहीं होता—इसका क्या कारण है ?

इस लेखमें इसी एक प्रश्नको लेकर कुछ विचार किया जा रहा है।

प्रकृतिका यह अटल नियम है कि कोई भी कार्य क्यों न हो, उसे उपयुक्त पद्धति या विधिके साथ करनेसे ही वह सफल होता है। यही बात ईश्वर-स्मरणके सम्बन्धमें भी है। यदि उसे विधिपूर्वक किया जायगा तो निश्चय ही वह शास्त्रोक्त फलका दाता होगा। कितने ही भोले-भाले भाई कहते हैं कि परमात्माके नाम-स्मरणमें नियमकी आवश्यकता नहीं है। देखो न, श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है—

तुलसी अपने राम को, रीझ भजौ के खीज।
उलटे सुलटे नीपजै, खेत पड़े सो बीज॥

अर्थात् रामको प्रेमसे अथवा द्वेषसे किसी भी प्रकार भजो उसका फल अवश्य मिलेगा, जैसे खेतमें बीज सीधा पड़े, चाहे उलटा, वह जमेगा अवश्य। परन्तु वे भाई गोस्वामी तुलसीदासजीके आशयको समझे नहीं।

गोस्वामीजी-जैसे मर्यादाके पोषक महात्मा शास्त्रविरुद्ध आदेश कभी नहीं दे सकते। उन्होंने उपर्युक्त दोहेमें भजन-विधिका खण्डन नहीं बल्कि समर्थन किया है; और इसके प्रमाणस्वरूप उक्त दोहेमें 'खेत' शब्द बैठा है। बीज उलटा पड़े या सीधा इसकी विशेष परवाह नहीं है; परन्तु उसके लिये नियमानुसार उर्वरा भूमि, यथोचित हवा-पानी और रखवालीकी जरूरत तो रहती ही है। इसलिये गोस्वामीजीने जो 'रीझ' और 'खीझ' शब्द रखे हैं, उन्हें विकल्पमात्र मानना चाहिये। दोहेका तात्पर्य तो यही है कि शुद्ध अन्तःकरणरूपी खेतमें ही ईश्वर—नाम-स्मरणरूपी बीज उगता है, न कि अशुद्ध मनरूपी ऊसर भूमिमें। और साथ-साथ 'खेत' शब्दसे संकेत कर दिया है कि ईश्वर-प्रेमरूपी जल सींचते रहनेसे, ईश्वरके नामके (आगे कहे जानेवाले) दस अपराधरूपी घास-फूसको हटा देनेसे, शास्त्रविरुद्ध मनःकल्पित मतवादरूपी कीड़ों, पशु-पक्षी और तुषारसे उसे बचाते रहनेसे, सच्चे संतोंके सत्संगरूपी प्रचण्ड सूर्यके ब्रह्मविचार या तत्त्व-विचाररूपी तापके निरन्तर लगते रहनेसे और मनरूपी चन्द्रमाकी उत्साह (लगन)-रूपी अमृत-वर्षा आदि सम्पूर्ण साधनरूप विधिसे ही भजनरूपी बीज परमात्म-साक्षात्काररूपी धान्य उत्पन्न करनेमें हेतु होता है। इसमें शास्त्रविधिका निषेध कहाँ है ? अवश्य ही यह बात जाननेकी है कि ईश्वर-स्मरण अर्थात् भजन करनेकी शास्त्रोक्त विधि क्या है ?

शास्त्रका वचन है—

सन्निन्दासति नामवैभवकथा श्रीशेशयोर्भेदधी-
रश्रद्धा श्रुतिशास्त्रदैशिकगिरां नाम्न्यर्थवादभ्रमः।
नामास्तीतिनिषिद्धवृत्तिविहितत्यागो हि धर्मान्तरैः
साम्यं नाम्नि जपे शिवस्य च हरेर्नामापराधा दश॥

अर्थात् (१) संतोंकी निंदा, (२) असत् (पापी) पुरुषके सामने नामके वैभवकी कथा कहना, (३) शिव और विष्णु (उनसे उपलक्षित गणेश, सूर्य, शक्ति)-में भेद-बुद्धि रखना, (४) वेद-वचनोंमें अश्रद्धा,

(५) शास्त्र-वचनोंमें अश्रद्धा, (६) सद्गुरुके वचनोंमें अश्रद्धा, (७) ईश्वरके नामकी महिमाको अर्थवाद समझनेका भ्रम, (८) सब पापोंको मिटानेवाला ईश्वरका नाम मेरे पास ही है, इससे मैं जो-जो पाप करूँगा, वे सब-के-सब नाम लेनेसे ही मिटते रहेंगे—ऐसा समझकर पाप करते रहना, (९) ईश्वरके नामसे सबसे अधिक पुण्य होता है, इसलिये संध्या-वन्दन, गायत्री-जप, देव-पूजा, दान-यज्ञ-तप आदि अन्य कृत्य करनेकी आवश्यकता न मानकर नित्य-नैमित्तिक वेद-शास्त्रोक्त शुभ कर्मोंको छोड़ देना और (१०) ईश्वरके नामको अन्य धर्मोंके बराबर समझना—ये ऊपर कहे हुए भगवान् शिव और विष्णुके नाम-जप-सम्बन्धी दस अपराध हैं, अतएव इन्हें छोड़कर ईश्वरका नाम जपना चाहिये। इसी भावको लेकर किसी महात्माने कहा है—

राम राम सब कोइ कहे, दसरित कहे न कोय।
एक बार दसरित कहे, (तो) कोटि यज्ञ फल होय॥

अर्थात् 'राम-राम' सभी कहते हैं, परन्तु नाम-जपके दस अपराधोंसे रहित होकर नहीं जपते। यदि इन दस अपराधोंसे रहित होकर एक बार भी जपे तो कोटि यज्ञोंका फल होता है। आश्चर्य है, शास्त्रकी ऐसी स्पष्ट आज्ञा होते हुए भी कोई-कोई शिव और विष्णुमें भेद मानते हैं, परन्तु ऐसा करके वे अपना अनिष्ट-साधन करते हैं।

भगवान्के किसी भी नाम और स्वरूपकी निन्दा न करते हुए भगवान्के समस्त नाम मेरे इष्टके ही नाम-रूप हैं—ऐसा समझना चाहिये।

उपरिलिखित दस अपराधोंसे बचते हुए शुद्ध और स्थिर चित्तसे उत्साह और प्रेमके साथ, प्रतिदिन यथाशक्ति नित्य-नैमित्तिक शुभ कर्मोंको करते हुए प्रातःसायं संध्याओंमें तथा यथासम्भव मध्याह्न और मध्यरात्रिके समय एकान्तमें बैठकर नित्यप्रति कम-से-कम एक लक्ष ईश्वरके नाम शान्तिपूर्वक दीर्घकालतक जपने चाहिये। ईश्वरके नामके जपमें चित्तकी वृत्तिको लगाकर राम, कृष्ण, शिव, विष्णु, ब्रह्मा, गणपति, सूर्य, शक्ति, नृसिंह, गोविन्द, नारायण, महादेव आदि ईश्वरके प्रसिद्ध नामोंमेंसे अपनी रुचिके अनुसार

किसी भी नामका जप किया जा सकता है।

भगवन्नामकी अमोघ शक्ति है, उसके द्वारा बहुत ही शीघ्र मनुष्य कल्याणको प्राप्त कर सकता है। नामपरायणतामें—नाममें विश्वास, नाममें आदर-बुद्धि, नाममें प्रेम, निष्काम भाव, नामार्थ-चिन्तन, निरन्तरता और गोपनीयता—ये सात भाव मुख्य हैं। इन भावोंसे युक्त होकर नामाश्रय करनेवाले पुरुषोंको नामके चमत्कारपूर्ण प्रभावके शीघ्र दर्शन होते हैं—

१—किसी भी अन्य साधनका तिरस्कार न करते हुए नाममें दृढ़ और अनन्य विश्वास होना चाहिये। नामसे ही सब कुछ हो सकता है और हो जायगा। नामकी जितनी जो कुछ महिमा शास्त्रों और संतोंने गायी है, सारी सत्य है। ऐसा विश्वास होना चाहिये। नाम-विश्वासके सम्बन्धमें गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीका निम्नलिखित पद स्मरण रखने योग्य है—

भरोसो जाहि दूसरो सो करो।
मोको तो रामको नाम कलपतरु कलि कल्यान फरो॥
करम उपासन, ग्यान, बेदमत, सो सब भाँति खरो।
मोहि तो 'सावनके अंधहि' ज्यों सूझत रंग हरो॥
चाटत रह्यो स्वान पातरि ज्यों कबहुँ न पेट भरो।
सो हौं सुमिरत नाम-सुधारस पेखत परुसि धरो॥
स्वारथ औ परमारथ हू को नहि कुंजरो-नरो।
सुनियत सेतु पयोधि पषाननि करि कपि-कटक तरो॥
प्रीति-प्रतीति जहाँ जाकी, तहँ ताको काज सरो।
मेरे तो माय-बाप दोउ आखर, हौं सिसु-अरनि अरो॥
संकर साखि जो राखि कहौं कछु, तौ जरि जीह गरो।
अपनो भलो राम-नामहि ते, तुलसिहि समुझि परो॥

(विनय-पत्रिका २२६)

२—नाममें वैसी ही आदर-बुद्धि होनी चाहिये, जैसी भक्तकी भगवान्‌में होती है। 'सत्कार-सेवित' अभ्यास ही स्थिर हुआ करता है। नाम

साक्षात् भगवान्का स्वरूप है—इस प्रकार नामके स्वरूप और प्रभावको जानकर अत्यन्त मनोयोग और श्रद्धाके साथ जो नाम-जप है, वही आदर-बुद्धियुक्त माना जाता है। यद्यपि नामकी स्वाभाविक शक्ति ऐसी है कि तिरस्कार, अवहेलना और असम्मानके साथ निकला हुआ नाम भी पापोंका नाश करता है, जैसे किसी भी प्रकारसे स्पर्श हो जानेपर अग्नि ईंधनको जला देती है, तथापि आदरयुक्त नाम-जपकी बड़ी महिमा है।

३—नाममें प्रेम होना चाहिये। प्रेमका फल आनन्द है। जिस वस्तु या व्यक्तिमें हमारा अनुराग या प्रेम होता है, उसकी स्मृति आते ही चित्त आनन्दसे उत्फुल्ल हो जाता है, उसका नाम सुनने अथवा लिये जानेपर चित्तसागरमें आनन्दकी तरंगें उठने लगती हैं।

इसी प्रकार नाममें प्रेम होनेपर एक-एक नामोच्चारणमें साधकको ऐसा अनुपम रस प्राप्त होता है कि वह उसीमें तन्मय हो जाता है। फिर नामको छोड़कर क्षणभरमें भी वह रह नहीं सकता। **'तद्विस्मरणे परमव्याकुलता।'**

४—नाममें निष्कामभाव होना चाहिये। जिसको नामके स्वरूप, प्रभाव, महत्त्व और रहस्यका पता है, वह नाम-जप करके नामके अतिरिक्त और क्या चाहेगा। नामके बदलेमें जो और कुछ चाहता है, उसने तो नामका कोई महत्त्व जाना ही नहीं। नामके बदलेमें संसारके सुख-भोग चाहना अमृतके बदले विष चाहना है और स्वर्गादि चाहना बहुमूल्य रत्न देकर पत्थर चाहना है। नाम-जपका फल नामनिष्ठा ही होना चाहिये।

५—भगवान्के नाममें और नामी भगवान्में अभेद है, भगवान्की भाँति ही भगवान्का नाम भी चिन्मय है—इस बातको याद रखते हुए नाम-स्मरण करना नामके 'अर्थका चिन्तन' करना है। 'मैं जो भगवान्का नाम-जप कर रहा हूँ, सो भगवान्का ही स्पर्श कर रहा हूँ', इस प्रकारकी निश्चित अनुभूति प्रत्येक नामोच्चारणके साथ-साथ होती रहनी चाहिये। जबतक अनुभूति न हो, तबतक ऐसी भावना करनी चाहिये।

६—नाम-जप तैलधारावत् लगातार होते रहना चाहिये। संसारके सारे

काम नाम-स्मरण करते हुए ही हों।

७—नाम-स्मरणको जहाँतक हो, कृपणके धन और जारके प्रेमकी भाँति छिपाकर रखना चाहिये। इसीमें उसकी मर्यादा है और इसीमें उसकी सुरक्षा है।

इसका यह अर्थ नहीं कि जो इन भावोंसे नाम-जप न कर सकते हों, वे नाम-जप ही न करें। किसी भी भावसे नाम-जप करना उत्तम है। कामनासे, क्रोधसे, भयसे, लोभसे, हँसीसे और सबको सुना-सुनाकर भी यदि नाम-जप किया जाय तो वह भी न करनेकी अपेक्षा बहुत उत्तम है। उससे भी पापोंका नाश होकर अन्तमें नामनिष्ठालाभ तथा भगवत्प्राप्ति हो जाती है।

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥

कुछ भी न हो तो जीभसे लगातार नामकी रट लगती रहनी चाहिये।

═══ ★ ═══

भगवन्नामके विषयमें दिव्य संदेश

(१) जगत्के ईश्वरवादीमात्र ईश्वरके नामको मानते हैं। भगवान्के नामसे उसके स्वरूप, गुणसमूह, महिमा, दया और प्रेमकी स्मृति होती है। जैसे सूर्यके उदयमात्रसे जगत्के सारे अन्धकारका नाश हो जाता है, वैसे ही भगवान्के नाम-स्मरण और कीर्तनमात्रसे ही समस्त दुर्गुण और पापोंका समूह तत्काल नष्ट हो जाता है। जिनके यहाँ परमात्मा जिस नामसे पुकारा जाता है, वे उसी नामको ग्रहण करें, इसमें कोई आपत्ति नहीं।

(२) परन्तु परमात्माका नाम लेनेमें लोग कई जगह बड़ी भूल कर बैठते हैं। भोगासक्ति और अज्ञानसे उनकी ऐसी समझ हो जाती है कि हम भगवन्नामका साधन करते ही हैं और नामसे पापनाश होता ही है। इसलिये पाप करनेमें कोई आपत्ति नहीं है, यों समझकर वे पापोंका छोड़ना तो दूर रहा, भगवान्के नामकी ओट या उसका सहारा लेकर पाप करने लगते हैं। एक मुकद्दमेबाज एक नाम-प्रेमी भक्तको गवाह बनाकर अदालतमें ले गया, उससे कहा—'देखो, मैं जो कुछ तुमसे कहूँ, न्यायाधीशके पूछनेपर वही

बात कह देना।' गवाहने समझा कि यह मुझसे सच्ची ही बात कहनेको कहेगा। पर उसकी बात सुननेपर पता लगा कि झूठ कहलाना चाहता है। इससे उसने कहा—'भाई! मैं झूठी गवाही नहीं दूँगा।' मुकद्दमेबाजने कहा—'इसमें आपत्ति ही कौन-सी है? क्या तुम नहीं जानते कि भगवान्‌के नामसे पापोंका नाश होता है। तुम तो नित्य भगवान्‌का नाम लेते ही हो, भक्त हो, जरा-सी झूठसे क्या बिगड़ेगा? एक ईश्वरके नाममें पापनाशकी जितनी शक्ति है उतनी मनुष्यमें पाप करनेकी नहीं है। मैं तो काम पड़नेपर यों ही कर लिया करता हूँ।' उसने कहा—'भाई! मुझसे यह काम नहीं होगा, तुम करते हो तो तुम्हारी मर्जी। मतलब यह कि इस प्रकार परमात्माके नाम या उसकी प्रार्थनाके भरोसे जो लोग पापको आश्रय देते हैं वे बड़ा अपराध करते हैं। वे तो पाप करनेमें भगवान्‌के नामको साधन बनाते हैं, नाम देकर बदलेमें पाप खरीदना चाहते हैं। ऐसे लोगोंकी दुर्गति नहीं होगी तो और किसकी होगी?'

(३) कुछ लोग जो संसारके पदार्थोंकी कामनावाले हैं वे भी बड़ी भूल करते हैं। वे भगवान्‌का नाम लेकर उसके बदलेमें भगवान्‌से धन-सम्पत्ति, पुत्र-परिवार, मान-बड़ाई आदि चाहते हैं। वास्तवमें वे भी भगवन्नामका माहात्म्य नहीं जानते। जिस भगवन्नामके प्रबल प्रतापसे राजराजेश्वरके अखण्ड राज्यका एकाधिपत्य मिलता हो, उस नामको क्षणभङ्गुर और अनित्य तुच्छ भोगोंकी प्राप्तिके कार्यमें खो देना मूर्खता नहीं तो क्या है? संसारके भोग आने और जानेवाले हैं, सदा ठहरते नहीं। प्रत्येक भोग दुःखमिश्रित हैं। ऐसे भोगोंके आने-जानेमें वास्तवमें हानि ही क्या है?

(क) जो लोग यह समझकर नाम लेते हैं कि इसके लेनेसे हमारे पाप नाश हो जायँगे वे भी विशेष बुद्धिमान् नहीं हैं। क्योंकि पापोंका नाश तो पापोंके फल-भोगसे भी हो सकता है। जिस ईश्वरके नामसे स्वयं प्रियतम परमात्मा प्रसन्न होता है, जो नाम प्रियतमकी प्रीतिका निदर्शन है, उसे पाप-नाश करनेमें लगाना क्या भूल नहीं है? वास्तवमें ऐसा करनेवाले भगवन्नामका पूरा माहात्म्य नहीं जानते, क्या सूर्यको कहना पड़ता है कि तुम

अँधेरेका नाश कर दो। उसके उदय होनेपर तो अन्धकारके लिये कोई स्थान ही नहीं रह जाता।

(४) भगवान्‌का नाम भगवत्प्रेमके लिये ही लेना चाहिये। भगवान् मिलें या न मिलें, परन्तु उनके नामकी विस्मृति न हो। प्रेमी अपने प्रेमीके मिलनेसे इतना प्रसन्न नहीं होता जितना उसकी नित्य स्मृतिसे होता है। यदि उसके मिलनेसे कहीं उसकी स्मृति छूट जाती हो तो वह यही चाहेगा कि ईश्वर भले ही न मिले, परन्तु उसकी स्मृति उत्तरोत्तर बढ़े, स्मृतिका नाश न हो। यही विशुद्ध प्रेम है।

(५) नाम-साधनमें कहीं कृत्रिमता न आ जाय। वास्तवमें आजकल जगत्‌में दिखावटी धर्म 'दम्भ' बहुत बढ़ गया है। बड़े-बड़े धर्मके उपदेशक न मालूम किस सांसारिक स्वार्थको लेकर कौन-सी बात कहते हैं, इस बातका पता लगाना कठिन हो जाता है। इस दम्भके दोषसे सबको बचना चाहिये। दम्भ कहते हैं बगुलाभक्तिको। अंदर जो बात न हो और ऊपरसे मान-बड़ाई प्राप्त करने या किसी कार्यविशेषकी सिद्धिके लिये दिखलायी जाय वही दम्भ है। दम्भी मनुष्य भगवान्‌को धोखा देनेका व्यर्थ प्रयत्नकर स्वयं बड़ा धोखा खाता है। भगवान् तो सर्वदर्शी होनेसे धोखा खाते नहीं, वह धूर्त जो जगत्‌को भुलावेमें डालकर अपना मतलब सिद्ध करना चाहता है स्वयं गिर जाता है। पाप उसके चिरसङ्गी बन जाते हैं। पापोंसे उसकी घृणा निकल जाती है। ऐसे मनुष्यको धर्मका परमतत्त्व, जिसे परमात्माका मिलन कहते हैं, कैसे प्राप्त हो सकता है? अतएव इस भयंकर दोषसे सर्वथा बचना चाहिये।

★

इस युगमें नाम-जप ही प्रधान साधन है

संसार समुद्रसे पार होनेके लिये कलियुगमें श्रीहरि-नामसे बढ़कर और कोई भी सरल साधन नहीं है। भगवन्नामसे लोक-परलोकके सारे अभावोंकी पूर्ति तथा दुःखोंका नाश हो सकता है। अतएव संसारके दुःख-

सुख, हानि-लाभ, अपमान-मान, अभाव-भाव, विपत्ति-सम्पत्ति—सभी अवस्थाओंमें प्रतिक्षण भगवान्‌का नाम लेते रहना चाहिये, विश्वासपूर्वक लेते रहना चाहिये। नाम साक्षात् भगवान् ही हैं, यों मानना चाहिये। नाम-जप इस युगमें सबसे बढ़कर भजन है।

नाम-जप करनेवालोंको बुरे आचरण और बुरे भावोंसे यथासाध्य बचना चाहिये। झूठ-कपट, धोखा-विश्वासघात, छल-चोरी, निर्दयता-हिंसा, द्वेष-क्रोध, ईर्ष्या-मत्सरता, दूषित आचार, व्यभिचार आदि दोषोंसे अवश्य बचना चाहिये। एक बातसे तो पूरा खयाल रखकर बचना चाहिये—वह यह कि भजनका बाहरी स्वाँग बनाकर इन्द्रियतृप्ति या किसी भी प्रकारके नीच स्वार्थका साधन कभी नहीं करना चाहिये। नामसे पाप नाश करना चाहिये; परन्तु नामको पाप करनेमें सहायक कभी नहीं बनाना चाहिये। नाम जपते-जपते ऐसी भावना करनी चाहिये कि 'प्रत्येक नामके साथ भगवान्‌के दिव्य गुण, अहिंसा, सत्य, दया, प्रेम, सरलता, साधुता, परोपकार, सहृदयता, ब्रह्मचर्य, अस्तेय, अपरिग्रह, संतोष, शौच, श्रद्धा, विश्वास आदि मेरे अंदर उतर रहे हैं और भरे जा रहे हैं। मेरा जीवन इन दैवी गुणोंसे तथा भगवान्‌के प्रेमसे ओतप्रोत हो रहा है। अहा ! नामके उच्चारणके साथ ही मेरे इष्टदेव प्रभुका ध्यान हो रहा है, उनके मधुर-मनोहर स्वरूपके दर्शन हो रहे हैं, उनकी सौन्दर्य-माधुर्य-सुधामयी त्रिभुवन-पावनी ललित लीलाओंकी झाँकी हो रही है। मन-बुद्धि उनमें तदाकारताको प्राप्त हो रहे हैं।'

मन न लगे तो नाम-भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये—'हे नाम-भगवन् ! तुम दया करो, तुम्हीं साक्षात् मेरे प्रभु हो; अपने दिव्य प्रकाशसे मेरे अन्तःकरणके अन्धकारका नाश कर दो। मेरे मनके सारे मलको जला दो। तुम सदा मेरी जिह्वापर नाचते रहो और नित्य-निरन्तर मेरे मनमें विहार करते रहो। तुम्हारे जीभपर आते ही मैं प्रेमसागरमें डूब जाऊँ; सारे जगत्‌को, जगत्‌के सारे सम्बन्धोंको, तन-मनको, लोक-परलोकको, स्वर्ग-मोक्षको भूलकर केवल प्रभुके—तुम्हारे प्रेममें ही निमग्न हो रहूँ। लाखों जिह्वाओंसे

तुम्हारा उच्चारण करूँ, लाखों-करोड़ों कानोंसे मधुर नाम-ध्वनिको सुनूँ और करोड़ों-अरबों मनोंसे दिव्य नामानन्दका पान करूँ। तृप्त होऊँ ही नहीं। पीता ही रहूँ नाम-सुधाको और उसीमें समाया रहूँ।'

यदि मन विशेष चञ्चल हो तो फिर जिह्वा और ओठोंको चलाकर नामका स्पष्ट उच्चारण करते हुए उसे सुननेका प्रयत्न कीजिये। तन्द्रा आती हो तो आँखें खोलकर वाणीसे स्पष्ट जप कीजिये। मनकी चञ्चलताका नाश करनेके लिये इन्द्रियोंका **संयम** आवश्यक है और उसके लिये स्पष्ट उच्चारणपूर्वक वाचिक जप करना चाहिये। वाचिक जपसे मन-इन्द्रियोंकी चञ्चलताका शमन होता है, फिर उपांशु जपके द्वारा नामकी रस-माधुरीकी ओर चित्तकी गति की जाती है। तदनन्तर मानसिक जपके द्वारा मधुर नाम-रसका पान किया जाता है।

भगवान्‌के सभी नाम एक-से हैं, सबमें समान शक्ति है, सभी पूर्ण हैं; तथापि जिस नाममें अपनी रुचि हो, जिसमें मन लगता हो और सद्‌गुरु अथवा सन्तने जिस नामका उपदेश किया हो, उसीका जप करना उत्तम है। दो-तीन नामोंका, जैसे राम, कृष्ण, हरि—जप एक ही भावनासे, एक साथ भी चलें तो भी हानि नहीं है।

—★—

सर्वार्थसाधक भगवन्नाम

इस प्रबल कलिकालमें जीवोंके कल्याणके लिये भगवान्‌का नाम ही एकमात्र अवलम्बन है—

नहिं कलि करम न भगति बिबेकू। राम नाम अवलंबन एकू॥

—पर मनुष्यका जीवन आज इतना व्यस्त हो चला है कि वह कहता है कि 'मुझे अवकाश ही नहीं मिलता। मैं भगवान्‌का नाम कब तथा कैसे लूँ।' यद्यपि यह सत्य नहीं है। मनुष्यके लिये काम—सच्चा काम उतना नहीं है, जितना वह व्यर्थके कार्योंको अपना कर्तव्य मानकर जीवनका अमूल्य

समय नष्ट करता है और अपनेको सदा काममें लगा पाता है। वह यदि व्यर्थके कार्योंको छोड़कर उतना समय भगवान्‌के स्मरणमें लगावे तो उसके पास भजनके लिये पर्याप्त समय है। पर ऐसा होना बहुत कठिन हो गया है। ऐसी अवस्थामें यदि जीभके द्वारा नाम-जपका अभ्यास कर लिया जाय तो जितनी देर जीभ बोलनेमें लगी रहती है, उसके सिवा प्रायः सब समय—सारे अङ्गोंसे सब काम करते हुए ही नाम-जप हो सकता है। जीभ नाममें लगी रहती है और काम होता रहता है। न काम रुकता है, न घरवाले नाराज होते हैं। वाद-विवाद तथा व्यर्थ बोलना बंद हो जानेसे मनुष्यकी वाणी पवित्र और बलवान् हो जाती है, झूठ-निन्दासे मनुष्य सहज ही बच जाता है, वाणीके अनर्गल उच्चारणसे होनेवाले बहुत-से दोषोंसे वह सहज ही छूट जाता है। नाम-जपसे पापोंका निश्चित नाश, अन्तःकरणकी शुद्धि होती है, उसकी तो सीमा ही नहीं है। इसलिये ऐसा नियम कर लेना चाहिये कि सुबह उठनेके समयसे लेकर रातको सोनेके समयतक जितनी देर आवश्यक कार्यसे बोलना पड़ेगा, उसे छोड़कर शेष सब समय जीभके द्वारा भगवान्‌का नाम जपता रहूँगा। अभ्याससे जितना ही यह नियम सिद्ध होगा, उतना ही अधिक भगवान्‌की कृपासे मानव-जीवन परम और चरम सफलताके समीप पहुँचेगा।

भगवान्‌के नाममें कोई नियम नहीं है। सभी जातिके, सभी वर्गके, सभी नर-नारी, बालक-वृद्ध सभी समय, सभी अवस्थाओंमें, भगवान्‌का नाम जीभसे जप सकते हैं, मनसे स्मरण कर सकते हैं। भगवान्‌का नाम वही, जो जिसको प्रिय लगे—राम, कृष्ण, हरि, गोविन्द, शिव, महादेव, हर, दुर्गा, नारायण, विष्णु, माधव, मधुसूदन आदि कोई भी नाम हो। भगवान्‌का नाम ले रहा हूँ, इस भावसे जपना चाहिये।

१. जिनको समय कम मिलता हो—बोलना अधिक पड़ता हो—ऐसे लोग जैसे वकील, अध्यापक, दुकानदार आदि—वे घरसे कचहरी, विद्यालय और दूकानपर जाते-आते समय रास्तेमें भगवान्‌का नाम लेते चलें

और हो सके तो मनमें स्मरण करते चलें।

२. विद्यार्थी स्कूल-कालेज जाते-आते समय भगवान्‌का नाम लें।

३. किसान हल जोतते, बीज बोते, निनार करते, पौधा लगाते, पानी सींचते, खाद देते, खेती काटते आदि समय भगवान्‌का नाम जपें।

४. मजदूर हाथोंसे हर प्रकारका काम करते रहें और नाम जपते रहें। घरसे कामके स्थानपर जाते-आते समय नाम-जप करें।

५. उच्च अधिकारी, मिनिस्टर, सेक्रेटरी, जज, मुन्सिफ, जिलाधीश, परगनाधिकारी, डिप्टी कलक्टर, पुलिस-अफसर, रेलवे-अफसर तथा कर्मचारी, डाक-तारके कार्यकर्त्ता, तहसीलदार, कानूनगो, पटवारी, इंजीनियर, ओवरसियर, जिलापरिषद् तथा म्युनिसपलिटीके अधिकारी और कर्मचारी—बैंकोंके अधिकारी और कर्मचारी—सभी अपना-अपना काम करते तथा जाते-आते समय भगवान्‌का नाम जीभसे लेते रहें।

६. व्यापारी, सेठ-साहूकार, उद्योगपति, आढ़तिये और दलाल आदि सभी सब समय जीभसे भगवन्नाम लेते रहें।

७. गृहस्थ माँ-बहिनें चर्खा कातते समय, चक्की पीसते समय, पानी भरते समय, गो-सेवा करते समय, बच्चोंका पालन करते समय, रसोई बनाते समय, धान कूटते समय तथा घरके अन्य काम करते समय भगवान्‌का नाम जपती रहें।

८. पढ़ी-लिखी बहिनें साज-शृङ्गार बहुत करती हैं, फैशन-परस्त होती जा रही हैं, यह बहुत बुरा है; पर वे भी साज-शृङ्गार करते समय भगवान्‌का नाम जपें। अध्यापिकाएँ और शिक्षार्थिनी छात्राएँ स्कूल-कालेज जाते-आते समय भगवान्‌का नाम लें।

९. सिनेमा देखना बहुत बुरा है—पाप है, पर सिनेमा देखनेवाले रास्तेमें जाते-आते समय तथा सिनेमा देखते समय जीभसे भगवान्‌का नाम जपें।

१०. इसी प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सभी नर-नारी सब समय भगवान्‌का नाम लें। सोनार, लोहार, कुम्हार, सुथार (बढ़ई), माली, नाई,

जुलाहा, धोबी, कुर्मी, चमार, भंगी सभी भाई-बहिनें अपना-अपना काम करते हुए जीभसे भगवान्‌का नाम लें।

आवश्यकता समझें तो जेबमें छोटी-सी या पूरी १०८ मनियोंकी माला रखें।

सब लोग अपने-अपने घरमें, गाँवमें, मुहल्लेमें, अड़ोस-पड़ोसमें, मिलने-जुलनेवालोंमें इसका प्रचार करें। यह महान् पुण्यका परम पवित्र कार्य है। याद रखना चाहिये—भगवन्नामसे सारे पाप-ताप, दुःख-संकट, अभाव-अभियोग मिटकर सर्वार्थसिद्धि मिल सकती है, मोक्ष तथा भगवत्प्रेमकी प्राप्ति हो सकती है।

इस महान् कार्यमें सभी लोग लगें, यह करबद्ध प््रार्थना है।

भगवन्नाम-साधना

स्वरूपका चिन्तन न हो सके तो निरन्तर भगवान्‌का नाम-स्मरण ही करना चाहिये। भगवान्‌के नाम-स्मरणसे मन और प्राण पवित्र हो जायँगे और भगवान्‌के पावन पदकमलोंमें अनन्य प्रेम उत्पन्न हो जायगा। नाम-जपकी सहज विधि यह है कि अपने श्वास-प्रश्वासके आने-जानेकी ओर ध्यान रखकर श्वास-प्रश्वासके साथ-ही-साथ मनसे और साथ ही धीमे स्वरसे वाणीसे भी भगवान्‌का नाम-जप करता रहे। यह साधन उठते-बैठते, चलते-फिरते, सोते-खड़े रहते सब समय किया जा सकता है। अभ्यास दृढ़ हो जानेपर चित्त विक्षेपशून्य होकर निरन्तर भगवान्‌के चिन्तनमें अपने-आप ही लग जायगा। प्रायः सभी प्रसिद्ध भक्तों और संतोंने इस साधनका प्रयोग किया था। महात्मा चरणदासजी कहते हैं—

स्वासा माहीं जपेतें दुबिधा रहे न कोय।

इसी प्रकार कबीरजी कहते हैं—

साँस साँस सुमिरन करौ, यह उपाय अति नीक।

मतलब यह कि भगवान्‌के स्वरूप, प्रभाव, रहस्य, गुण, लीला अथवा नामका चिन्तन निरन्तर तैलधाराकी भाँति होते रहना चाहिये। यही अखण्ड भजन है।

भगवान्‌के नाम-श्रवण और कीर्तनका महान् फल होता है। जहाँतक भगवान्‌के नामकी ध्वनि पहुँचती है, वहाँतकका वातावरण पवित्र हो जाता है। मृत्युकालके अन्तिम श्वासमें भगवान्‌का नाम किसी भी भावसे जिसके मुँहसे निकल जाता है, उसको परमपदकी प्राप्ति हो जाती है। भगवान्‌के नामका जहाँ कीर्तन होता है वहाँ यमदूत नहीं जा सकते। अतएव दस नामापराधोंसे बचते हुए भगवान्‌के नामका जप-कीर्तन और श्रवण अवश्य ही करना चाहिये।

सभी सद्ग्रन्थों और सन्तोंकी वाणियोंमें भगवन्नामकी महिमा गायी गयी है। श्रीमद्भागवतके निम्नलिखित श्लोक मनन करने योग्य हैं।

श्रीमद्भागवतमें कहा है—

पतितः स्खलितश्चार्तः क्षुत्त्वा वा विवशो ब्रुवन्।
हरये नम इत्युच्चैर्मुच्यते सर्वपातकात्॥
सङ्कीर्त्यमानो भगवाननन्तः
श्रुतानुभावो व्यसनं हि पुंसाम्।
प्रविश्य चित्तं विधुनोत्यशेषं
यथा तमोऽर्कोऽभ्रमिवातिवातः॥

(१२।१२।४६-४७)

'कोई भी मनुष्य गिरते, पड़ते, छींकते और दुःखसे पीड़ित होते समय परवश होकर भी यदि ऊँचे स्वरसे '**हरये नमः**' पुकार उठता है तो वह सब पापोंसे छूट जाता है। जैसे सूर्य पर्वतकी गुफाके अन्धकारका भी नाश कर देता है और जैसे प्रचण्ड वायु बादलोंको छिन्न-भिन्न करके लुप्त कर देता है, इसी प्रकार अनन्त भगवान्‌का नाम-कीर्तन अथवा उनके प्रभावका श्रवण हृदयमें प्रवेश करके समस्त दुःखोंका अन्त कर देता है।'

यह तो विवश होकर नाम लेनेका फल है। प्रेमसे लेनेपर तो कहना ही क्या। इसीसे गोसाईंजी कहते हैं—

बिबसहुँ जासु नाम नर कहहीं। जनम अनेक रचित अघ दहहीं॥
सादर सुमिरन जो नर करहीं। भव बारिधि गोपद इव तरहीं॥

अतएव भक्तिकी प्राप्तिके लिये निरन्तर भगवान्‌के नाम-गुण-यशका कीर्तन, श्रवण और चिन्तन निःसन्देह परम साधन है।

★

भगवन्नाम-कीर्तन (कुछ ज्ञातव्य बातें)

भगवान्‌के यश, पराक्रम, गुण, माहात्म्य, चरित्र और नामोंका प्रेमपूर्वक कीर्तन करना चाहिये।

(क) कीर्तन स्वाभाविक होना चाहिये, उसमें कृत्रिमता न हो।

(ख) कीर्तन केवल भगवान्‌को रिझानेकी शुभ भावनासे हो, लोगोंको दिखलानेके लिये न हो।

(ग) कीर्तन नियमितरूपसे हो।

(घ) यथासम्भव कीर्तनमें बाजे और करतालका भी प्रबन्ध रहे।

(ङ) कीर्तनके साथ स्वाभाविक नृत्य भी हो।

(च) समय-समयपर मण्डली बनाकर नगर-कीर्तन भी किया जाय।

स्वाभाविक कीर्तन वह है जो अपने मनकी मौजसे अपने सुखके लिये बिना प्रयास होता है, उसमें एक अनोखी मस्ती रहती है जिसका अनुभव उस साधकको ही होता है, दूसरे लोग उसका अनुमान भी नहीं कर सकते।

माननीय, गुणज्ञ, सारग्राही सत्पुरुष इसीलिये कलियुगकी प्रशंसा करते हैं कि इसमें कीर्तनसे ही साधक संसारके सङ्गका त्यागी होकर परमधामको पाता है (भागवत ११। ५। ३६)। महाप्रभु चैतन्य, भक्त तुकाराम और नरसीजी आदि इसके उदाहरण हैं। इस दोषपूर्ण कलियुगमें यही एक भारी गुण है कि इसमें भगवान्‌के कीर्तनसे ही मनुष्य समस्त बन्धनोंसे छूटकर

परमधामको प्राप्त करता है। सत्ययुगमें भगवान्‌के ध्यानसे, त्रेतामें यज्ञसे, द्वापरमें सेवासे जो फल होता था, वही कलियुगमें केवल श्रीहरि-कीर्तनसे होता है। अतएव जो अहर्निश प्रेमपूर्वक हरिकीर्तन करते हुए घरका सारा काम करते हैं वे भक्तजन धन्य हैं (भागवत)।

भगवान्‌के नामके समान मङ्गलकारी और कुछ भी नहीं है, भक्तिरूपी इमारतकी नींव श्रीभगवन्नाम ही है। पूर्वकृत महान् पापोंका नाश करनेमें भगवान्‌का नाम प्रचण्ड दावानल है, भक्त अजामिल और जीवन्ती वेश्याका इतिहास प्रसिद्ध है। परन्तु जो लोग दम्भसे या पाप करनेके लिये भगवान्‌का नाम लेते हैं, वे पातकी हैं। जो लोग नामकी आड़में पाप करते हैं उनके वे पाप वज्रलेप हो जाते हैं, उन पापोंकी शुद्धि करनेमें यमराज भी समर्थ नहीं हैं (पद्मपुराण, ब्रह्मखण्ड)।

★

विविध कार्योंके लिये विभिन्न भगवन्नामोंका जप-स्मरण

कामना-सिद्धिके लिये—

कामः कामप्रदः कान्तः कामपालस्तथा हरिः।
आनन्दो माधवश्चैव कामसंसिद्धये जपेत्॥

'अभीष्ट कामनाकी सिद्धिके लिये 'काम', 'कामप्रद', 'कान्त', 'कामपाल', 'हरि', 'आनन्द और 'माधव'—इन नामोंका जप करे।'

शत्रु-विजयके लिये—

रामः परशुरामश्च नृसिंहो विष्णुरेव च।
विक्रमश्चैवमादीनि जप्यान्यरिजिगीषुभिः॥

'शत्रुओंपर विजय पानेकी इच्छावाले लोगोंको 'राम', 'परशुराम', 'नृसिंह', 'विष्णु' तथा 'विक्रम' इत्यादि भगवन्नामोंका जप करना चाहिये।'

विद्या-प्राप्तिके लिये—

विद्याभ्यस्यता नित्यं जप्तव्यः पुरुषोत्तमः ।

'विद्याभ्यास करनेवाले छात्रको प्रतिदिन 'पुरुषोत्तम' नामका जप करना चाहिये।'

बन्धन-मुक्तिके लिये—

दामोदरं बन्धगतो नित्यमेव जपेन्नरः ।

'बन्धनमें पड़ा हुआ मनुष्य नित्य ही 'दामोदर' नामका जप करे।'

नेत्र-बाधा-नाशके लिये—

केशवं पुण्डरीकाक्षमनिशं हि तथा जपेत् ।
नेत्रबाधासु सर्वासु................... ॥

'सम्पूर्ण नेत्र-बाधाओंमें नित्य-निरन्तर 'केशव' एवं 'पुण्डरीकाक्ष' नामोंका जप करे।'

भयनाशके लिये—

हृषीकेशं भयेषु च ।

'भयके अवसरोंपर उसके निवारणके लिये 'हृषीकेश' का स्मरण करे।'

औषध-सेवनके लिये—

अच्युतं चामृतं चैव जपेदौषधकर्मणि ।

'औषध-सेवनके कार्योंमें 'अच्युत' और 'अमृत' नामोंका जप करे।'

युद्धस्थलमें जाते समय—

संग्रामाभिमुखे गच्छन् संस्मरेदपराजितम् ।

'युद्धकी ओर जाते समय 'अपराजित' का स्मरण करे।'

पूर्व आदि दिशाओंमें जाते समय—

चक्रिणं गदिनं चैव शार्ङ्गिणं खड्गिनं तथा ।
क्षेमार्थी प्रवसने नित्यं दिक्षु प्राच्यादिषु स्मरेत् ॥

'पूर्व आदि दिशाओंमें प्रवास करते (परदेश जाते या रहते) समय कल्याण चाहनेवाला पुरुष प्रतिदिन 'चक्री' (चक्रपाणि), 'गदी' (गदाधर), 'शार्ङ्गी' (शार्ङ्गधर) तथा 'खड्गी' (खड्गधर) इन नामोंका स्मरण करे।'

सारे व्यवहारोंमें—

अजितं वाधिपं चैव सर्वं सर्वेश्वरं तथा।
संस्मरेत् पुरुषो भक्त्या व्यवहारेषु सर्वदा॥

'समस्त व्यवहारोंमें सदा मनुष्य भक्ति-भावसे 'अजित', 'अधिप', 'सर्व' तथा 'सर्वेश्वर'—इन नामोंका स्मरण करे।'

क्षुत-प्रस्खलनादि, ग्रहपीडादि और दैवी विपत्ति-निवारणके लिये—

नारायणं सर्वकालं क्षुतप्रस्खलनादिषु।
ग्रहनक्षत्रपीडासु देवबाधासु सर्वतः॥

'छींक लेने, प्रस्खलन (लड़खड़ाने) आदिके समय, ग्रह-पीड़ा, नक्षत्र-पीड़ा तथा दैवी-बाधाओंमें सर्वतोभावसे हर समय 'नारायण' का स्मरण करे।'

डाकू तथा शत्रुओंकी पीड़ाके समय—

अन्धकारे समस्तीव्रे नरसिंहमनुस्मरेत्॥

'अत्यन्त घोर अन्धकारमें डाकू तथा शत्रुओंकी ओरसे बाधाकी सम्भावना होनेपर मनुष्य बारम्बार 'नरसिंह' नामका स्मरण करे।'

अग्निदाहके समय—

अग्निदाहे समुत्पन्ने . संस्मरेज्जलशायिनम्।

'घर या गाँवमें आग लग जानेपर 'जलशायी' का स्मरण करे।'

सर्प-विषसे रक्षाके लिये—

गरुडध्वजानुस्मरणाद् विषवीर्यं व्यपोहति।

''गरुडध्वज' नामके बारम्बार स्मरणसे मनुष्य सर्प-विषके प्रभावको दूर कर देता है।'

स्नान, देवार्चन, हवन, प्रणाम तथा प्रदक्षिणा करते समय—

कीर्तयेद् भगवन्नाम वासुदेवेति तत्परः॥

'स्नान, देव-पूजा, होम, प्रणाम तथा प्रदक्षिणा करते समय मनुष्य भगवत्परायण हो 'वासुदेव'—इस भगवन्नामका कीर्तन करे।'

वित्त-धान्यादिके स्थापनके समय—

कुर्वीत तन्मनो भूत्वा अनन्ताच्युतकीर्तनम्।

'धन-धान्यादिकी स्थापनाके समय मनुष्य भगवान्‌में मन लगाकर 'अनन्त' और 'अच्युत' इन नामोंका कीर्तन करे।'

संतानके लिये—

जगत्पतिमपत्यार्थे स्तुवन् भक्त्या न सीदति।

'संतानकी प्राप्तिके लिये भक्तिपूर्वक 'जगत्पति' (जगदीश या जगन्नाथ) की स्तुति करनेवाला पुरुष कभी दुःखी नहीं होता।'

सर्व प्रकारके अभ्युदयके लिये—

श्रीशं सर्वाभ्युदयिके कर्मण्याशु प्रकीर्तयेत्॥

'सम्पूर्ण अभ्युदय-सम्बन्धी कर्मोंमें शीघ्रतापूर्वक 'श्रीशं' (श्रीपति) का उच्च स्वरसे कीर्तन करे।'

अरिष्ट-निवारणके लिये—

अरिष्टेषु ह्यशेषेषु विशोकं च सदा जपेत्।

'सम्पूर्ण अरिष्टोंके निवारणके लिये सदा 'विशोक' नामका जप करे।'

निर्जन स्थानमें तथा आँधी-तूफान आदि उपद्रवोंमें मृत्युके समय—

मरुत्प्रपाताग्निजलबन्धनादिषु मृत्युषु।
स्वतन्त्रपरतन्त्रेषु वासुदेवं जपेद् बुधः॥

'स्वेच्छा या परेच्छावश अथवा स्वाधीन या पराधीन अवस्थामें किसी निर्जन स्थानमें पहुँचनेपर आँधी-तूफान (ओला-वर्षा), अग्नि (दावानल), जल (अगाध जलराशिमें निमज्जन) तथा बन्धन आदिके कारण मृत्यु या प्राणसंकटकी अवस्था प्राप्त हो तो बुद्धिमान् मनुष्य 'वासुदेव' नामका जप करे। ऐसा करनेसे बाधाएँ दूर हो जाती हैं।'

कलियुगके दोष-नाशके लिये—

तन्नास्ति कर्मजं लोके वाग्जं मानसमेव वा।
यन्न क्षपयते पापं कलौ गोविन्दकीर्तनात्॥

'कलियुगमें इस जगत्‌के भीतर ऐसा कोई कर्मज (शारीरिक), वाचिक और मानसिक पाप नहीं है, जिसे मनुष्य 'गोविन्द' नामका कीर्तन करके नष्ट न कर दे।'

शमायालं जलं वह्नेस्तमसो भास्करोदयः।
शान्त्यै कलेरघौघस्य नामसङ्कीर्तनं हरेः॥

'जैसे आग बुझा देनेके लिये जल और अन्धकारको नष्ट कर देनेके लिये सूर्योदय समर्थ है, उसी प्रकार कलियुगकी पापराशिका शमन करनेके लिये 'श्रीहरि'का नाम-कीर्तन समर्थ है।'

पराकचान्द्रायणतप्तकृच्छ्रैर्न देहशुद्धिर्भवतीति तादृक्।
कलौ सकृन्माधवकीर्तनेन गोविन्दनाम्ना भवतीह यादृक्॥

'कलियुगमें एक बार 'माधव' या 'गोविन्द' नामके कीर्तनसे यहाँ जीवकी जैसी शुद्धि होती है, वैसी इस जगत्में पराक, चान्द्रायण तथा तप्तकृच्छ्र आदिसे प्रायश्चित्तोंद्वारा भी नहीं होती।'

सकृदुच्चारयन्त्येतद् दुर्लभं चाकृतात्मनाम्।
कलौ युगे हरेर्नाम ते कृतार्था न संशयः॥

'जो कलियुगमें अपुण्यात्माओंके लिये दुर्लभ इस 'हरि' नामका एक बार उच्चारण कर लेते हैं, वे कृतार्थ हो गये हैं, इसमें संशय नहीं।'

विष्णुधर्मोत्तरमें मार्कण्डेय-वज्र-संवादमें कहा गया है—

जल-प्रतरणके समय—

कूर्मं वराहं मत्स्यं वा जलप्रतरणे स्मरेत्।

'जलसे पार होते समय भगवान् 'कूर्म' (कच्छप), 'वराह' अथवा 'मत्स्य'का स्मरण करे।'

अग्निदाहके समय—

भ्राजिष्णुमग्निजनने जपेन्नाम त्वखण्डितम्।

'कहीं आग लग गयी हो उसकी शान्तिके लिये 'भ्राजिष्णु' इस नामका अखण्ड जप आरम्भ कर दे।'

आपत्ति-विपत्ति, ज्वर, शिरोरोग तथा विषवीर्यमें—

गरुडध्वजानुस्मरणादापदो मुच्यते नरः।
ज्वरजुष्टशिरोरोगविषवीर्यं च शाम्यति॥

''गरुडध्वज'का नाम बारम्बार स्मरण करके मनुष्य आपत्तिसे छूट जाता है, साथ ही वह ज्वररोग, सिरदर्द तथा विषके प्रभावको भी शान्त कर देता है।'

युद्धके समय—

बलभद्रं तु युद्धार्थी।

'युद्धार्थी मनुष्य 'बलभद्र'का स्मरण करे।'

कृषि, व्यापार और अभ्युदयके लिये—

कृष्यारम्भे हलायुधम्।
उत्तारणं वणिज्यार्थी राममभ्युदये नृप॥

'नरेश्वर! खेतीके आरम्भमें किसान 'हलायुध'का स्मरण करे। व्यापारकी इच्छावाला 'उत्तारण'को याद करे और अभ्युदयके लिये 'राम'का स्मरण करे।'

मङ्गलके लिये—

मङ्गल्यं मङ्गले विष्णुं मङ्गल्येषु च कीर्तयेत्।

'माङ्गलिक कर्मोंमें मङ्गलकारी एवं मङ्गलमय 'श्रीविष्णु'का कीर्तन करे।'

सोकर उठते समय—

उत्तिष्ठन् कीर्तयेद् विष्णुम्।

'सोकर उठते समय 'विष्णु'का कीर्तन करे।'

निद्राकालमें—

प्रस्वपन् माधवं नरः।

'सोते समय मानव 'माधव'का स्मरण करे।'

भोजनके समय—

भोजने चैव गोविन्दं सर्वत्र मधुसूदनम्॥

'भोजनकालमें 'गोविन्द'का और सर्वत्र सदा 'मधुसूदन'का चिन्तन करे।'

विविध सोलह कार्योंमें विविध सोलह नाम—

औषधे चिन्तयेद् विष्णुं भोजने च जनार्दनम्।
शयने पद्मनाभं च विवाहे च प्रजापतिम्॥
युद्धे चक्रधरं देवं प्रवासे च त्रिविक्रमम्।
नारायणं तनुत्यागे श्रीधरं प्रियसङ्गमे॥

दुःस्वप्ने स्मर गोविन्दं संकटे मधुसूदनम्।
कानने नारसिंहं च पावके जलशायिनम्॥
जलमध्ये वराहं च पर्वते रघुनन्दनम्।
गमने वामनं चैव सर्वकार्येषु माधवम्॥
षोडशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते॥

'औषध-सेवनके समय 'विष्णु'का, भोजनमें 'जनार्दन'का, शयनमें 'पद्मनाभ'का, विवाहमें 'प्रजापति'का, युद्धमें 'चक्रधर'का, प्रवासमें 'त्रिविक्रम'का, शरीरत्यागके समय 'नारायण'का, प्रिय-मिलनमें 'श्रीधर'का, दुःस्वप्न-दोषनाशके लिये 'गोविन्द'का, संकटमें 'मधुसूदन'का, जंगलमें 'नृसिंह'का, अग्नि लगनेपर 'जलशायी' भगवान्‌का, जलमें 'वराह'का, पर्वतपर 'रघुनन्दन'का, गमनमें 'वामन'का और सभी कार्योंमें 'माधव'का स्मरण करना चाहिये। जो प्रातःकाल उठकर इन नामोंका पाठ करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोक (वैकुण्ठ)-में पूजित होता है।'

★

मन्त्र और नाम-जप

'**ॐ नमो नारायणाय,**' '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**'का जप कर सकते हैं और सभी जप स्नानादिके बाद शुद्धतापूर्वक ही करना चाहिये। वैश्य-गायत्री मुझे मालूम नहीं है। वह ब्राह्मण-गायत्रीसे भिन्न तो होगी ही। परन्तु मेरे विचारसे तो जिसे ब्राह्मण-गायत्री कहते हैं, उसीको यज्ञोपवीत-संस्कारयुक्त तीनों वर्णवालोंको जपना चाहिये। गायत्रीके जो अनेक भेद किये गये हैं वे प्राचीन नहीं हैं। पीछेके महानुभावोंने किये हैं, ऐसा प्रतीत होता है।

इस मन्त्रको मूलमन्त्र कहते हैं। रामायणमें राम-नामको ही मूलमन्त्र कहा गया है। इसीका जप श्रीशङ्करभगवान् करते हैं।

× × × ×

श्रीदुर्गाजीका दुर्गा नाम ही ढाई अक्षरका है। इसका जप आप हर समय कर सकते हैं। प्रतिदिन स्नान-सन्ध्या आदिसे निवृत्त होकर एक आसनपर बैठकर मालाद्वारा जप करना चाहिये। जितना आप अधिक-से-अधिक प्रेमपूर्वक जप कर सकें, उतना ही अच्छा है—**'अधिकस्याधिकं फलम्।'** इसके जपकी कोई नियमित संख्या या विशेष विधि नहीं है।

'सरस्वती' का बीज-मन्त्र **'ऐं'** है। यह सबसे छोटा मन्त्र है। सरस्वतीजीका ध्यान करते हुए इस मन्त्रका जप करनेसे उनकी कृपा प्राप्त होती है। श्रीदेवीभागवतमें इसकी बड़ी महिमा बतायी गयी है। सुदर्शनने इसीके जपसे सरस्वतीका प्रत्यक्ष दर्शन और दुर्लभ वरदान प्राप्त किया था।'

प्रत्येक कामनाकी पूर्ति करनेवाले हैं स्वयं श्रीभगवान्, अतः प्रेमपूर्वक उन्हींका नाम जपना चाहिये—

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम्॥

(श्रीमद्भागवत २।३।१०)

'अर्थात् 'कोई कामना न हो', अथवा सब प्रकारकी कामनाएँ हों या मोक्षमात्रकी अभिलाषा हो, मनुष्य तीव्र भक्तियोगके द्वारा परमपुरुष भगवान्‌की आराधना करे। अतः प्रत्येक कामनाकी पूर्तिका उपाय है—भगवान्‌की अटल भक्ति और भगवान्‌के नामोंका निरन्तर जप।'

—★—

राम-नामके बहाने तमोगुणका आश्रय मत लीजिये

जहाँतक मेरा अनुमान है, आप राम-नामकी आड़ लेकर आलस्य और प्रमादकी तमोमयी दुःस्थितिमें पड़ गये हैं। आपको मन धोखा दे रहा है। यह सत्य है कि राम-नाम अमोघ है। यह भी सत्य है कि राम-नाम सारे तापोंके नाश करनेवाली एक दवा है; परन्तु राम-नामका विश्वासी साधक या राम-नामका आश्रय करनेवाला भक्त क्या श्रीरामकी आज्ञाका पालन नहीं करेगा? श्रुति-स्मृति तो भगवान्‌की आज्ञा ही है। जिस घरमें आप पैदा हुए हैं, जिन

माता-पिताने आपको जन्म देकर तथा बड़े-बड़े दुःखोंको भोगकर पाला-पोसा और बड़ा किया है, जिस पत्नीको आप अग्निकी साक्षी देकर घर लाये हैं, उनके पालन-पोषणकी आपपर जिम्मेवारी है। इस जिम्मेवारीको निबाहनेके लिये भगवान् रामकी आज्ञा है। आप राम-नामके अर्थस्वरूप भगवान् रामकी जीवन-लीलाओंको देखिये। उन्होंने आलस्य और प्रमादको कभी आश्रय नहीं दिया। कर्तव्यका पालन ही उनका मुख्य उद्देश्य रहा। राम-नामके प्रेमी श्रीहनुमान्‌जीसे बढ़कर और कौन होंगे, पर वे चौबीसों घंटे श्रीरामकी सेवामें ही संलग्न रहते हैं। सेवाके लिये ही वे जीवन धारण करते हैं। गीतामें तो भगवान् श्रीकृष्णने निष्कामभावसे निरन्तर भगवत्सेवारूप कर्म करनेकी आज्ञा दी है। मुझे बड़ा आश्चर्य है कि आप गीता-रामायणका नाम लेकर तथा राम-नामकी बात कहकर चारपाईपर पड़े सोये रहनेका तथा विषाद एवं निराशाकी तमसाच्छन्न मानसभूमिमें विचरण करते रहनेका समर्थन करते हैं और उसके लिये मुझसे भी स्वीकृति चाहते हैं। मैं तो समझता हूँ, सोना और रोना—दोनों ही राम-नाम लेनेवालेके लिये विरोधी भाव हैं। राम-नामके सेवकको निरन्तर मनसे राम-राम जपते हुए रामकी सेवासे कब अवकाश मिलेगा कि वह बारह-बारह घंटे सोनेमें बितायेगा और राम-नामके विश्वासीको विषाद और निराशाका अवसर ही कब होगा, जब वह रोयेगा। विषाद और निराशाके दुःखसे बचनेके लिये आप बारह घंटे सोते हैं या कभी जागते हैं तो सिनेमामें चले जाते हैं। कोई भी उद्योग, परिश्रम, किसी कार्यकी खोज नहीं करते—और ***'अजगर करै न चाकरी पंछी करै न काम'*** का उदाहरण देकर अपनेको नामविश्वासी मान रहे हैं; यह आपका बुद्धिभ्रम ही है। यदि राम-नामपर इतना विश्वास है तो फिर निराशा, विषाद और रोना क्यों? आपकी स्थिति तो यह है कि आपको सोने-रोनेसे ही फुरसत नहीं मिलती, इसलिये आप राम-नामका जप भी नहीं कर पाते; थोथी बात ही करते हैं। मैं तो कहता हूँ कि राम-नामका दिन-रात जाप करनेवालेको भी रामकी सेवा-बुद्धिसे कर्त्तव्य-कर्मका पालन अवश्य करना चाहिये। भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको निरन्तर अपना (भगवान्‌का) स्मरण करनेकी स्पष्ट

****

आज्ञा दी, पर साथ ही युद्ध करनेका भी आदेश दिया। भगवान्‌ने कहा—

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्॥

(गीता ८।७)

'[अन्तकालमें मेरा स्मरण करनेवालेको मेरी (भगवान्‌की) प्राप्ति होती है।] इसलिये तुम सब समय निरन्तर मेरा स्मरण करो और युद्ध भी करो। इस प्रकार मुझमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिसे युक्त होकर तुम निस्संदेह मुझको ही प्राप्त होगे।'

'सब धर्म छोड़कर अनन्य शरणागति'का आदेश देकर भी भगवान्‌ने अर्जुनसे युद्धरूपी भीषण कर्म ही करवाया, उन्हें हाथमें माला लेकर एकान्तमें जप करनेकी आज्ञा नहीं दी; क्योंकि अर्जुनके लिये वही उचित था। इसलिये मोहवश कर्त्तव्यकर्मका त्याग करके अपनेको भक्त या विश्वासी कहना और प्रतिकूल स्थितिका अनुभव करते हुए प्रमादालस्यमें डूबे रहना तो आत्मप्रवञ्चनाके अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

माना, भाग्यके अनुसार ही परिणाम प्राप्त होता है, पर भाग्य—प्रारब्ध भी तो पुरुषार्थ—पूर्वकृत कर्मका ही परिणाम है न? फिर मनुष्य तो कर्मयोनि है, वह 'पंछी' और 'अजगर' की तरह भोगयोनि नहीं है। उसे तो भगवान्‌ने कर्म करनेके लिये यहाँ भेजा है, उसकी भगवदर्थ निष्काम कर्मके प्रति कभी विरक्ति नहीं होनी चाहिये। विरक्ति होनी चाहिये—कर्मफलके प्रति रागका अभाव होना चाहिये—भोग-पदार्थोंमें।

अतएव मैं दृढ़तापूर्वक आपको सलाह देता हूँ कि—

(१) आप छः घंटेसे अधिक मत सोया कीजिये। दिनमें तो कभी नींद मत लीजिये।

(२) चित्तको विषाद-निराशाके दुःखसे बचानेके लिये नींद लेना—यह विचार भी तामसिक है। आप निश्चय कीजिये कि भगवान्‌की कृपापर तथा उनके नामपर विश्वास करके आप उनके आज्ञानुसार कर्त्तव्यक्षेत्रपर डट जायँगे और आलस्य-प्रमाद छोड़कर विपत्तिके नाशका प्रयत्न करेंगे तो

विषाद-निराशाका कारण ही नष्ट हो जायगा और सुख-शान्तिकी आपको प्राप्ति हो जायगी। जबतक विषाद-निराशा है, तबतक तो मङ्गलमय भगवान् और उनके मङ्गलमय विधानपर आपको विश्वास ही नहीं है।

(३) विषाद-निराशासे बचनेके लिये सिनेमामें जाकर वहाँसे दुर्विचार लेकर आते हैं, यह भी आपकी भूल है। इसका त्याग कीजिये।

(४) नींद और सिनेमा तो तमोगुणके प्रधान लक्षण आलस्य और प्रमादके मूर्तरूप हैं। इनका आश्रय त्यागकर विषाद और निराशाका नाश करनेके लिये पुरुषसिंह बनकर सत्पुरुषार्थमें लगिये। भगवान्‌की कृपाका भरोसा करने और उनके आज्ञानुसार कर्त्तव्यकर्ममें लगे रहनेका व्रत ले लीजिये। विजय आपके हाथमें रहेगी। यदि प्रारब्धवश लौकिक सफलता न भी मिली, जिसकी आशङ्का उपर्युक्त प्रकारसे करनेपर बहुत ही कम है, तो भी आपका जीवन विषाद और निराशाके दुःखपूर्ण क्षेत्रसे तो सर्वथा पृथक् हो जायगा—इसमें जरा भी संदेह नहीं है। भगवान्‌के अन्तरङ्ग सेवक संजयने धृतराष्ट्रसे बहुत सत्य कहा है—

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।

(गीता १८।७८)

'जहाँ योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण हैं और (कर्त्तव्यपर डटा हुआ) गाण्डीव धनुर्धारी अर्जुन है, वहींपर श्री, विजय, विभूति और अचल नीति है—यह मेरा मत है।'

अतएव आप कभी यह मत समझिये कि भजन करनेवाला आलसी, प्रमादी और कर्त्तव्यविमुख होता है। वह तो बड़ा शूर होता है, जो भगवान्‌के अमोघ कृपाबलका भरोसा करके सारी विघ्न-बाधाओंके मस्तकपर पैर रखकर उन्हें कुचलता हुआ, उनके दुर्गम दुर्गोंको ध्वस्त और धूलिसात् करता हुआ सच्ची सफलताके मार्गमें आगे बढ़ता रहता है। वह न कभी निराश-उदास होता है और न कभी कर्त्तव्यच्युत होकर कायरकी तरह तामसिक जीवन बिताता है।

★

भगवन्नाम ही सरल साधन है

मेरी अपनी धारणा तथा अनुभवके अनुसार सर्वोपयोगी सरल साधन श्रीभगवान्‌का नाम है। कलियुगपीड़ित मानवोंके लिये योग, तप, वेदान्त तथा उच्च स्तरकी भक्ति आदि साधन असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य है। उनके लिये तो एक भगवन्नाम ही ऐसा सर्वोपयोगी, सफल एवं सरल साधन है, जिससे सभी साधनोंका फल प्राप्त हो सकता है। यदि भगवन्नामका आश्रय लिया जाय, अभिमान तथा दम्भका परित्याग करके प्राणिमात्रका आदर-सम्मान किया जाय तथा जीवनमें बाहरी दिखावट न हो तो भगवान्‌की कृपासे मनुष्य-जीवन सहज ही सफल हो सकता है। अवश्य ही भगवत्कृपापर विश्वास भी हो तो सोना और सुगन्ध दोनों हैं।

—— ★ ——

भगवन्नामसे सब सम्भव

भगवन्नाम परम मङ्गलमय तथा सम्पूर्ण बड़े-से-बड़े उपद्रवोंको—आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक व्याधियोंको मिटाकर सब प्रकारसे परम कल्याण करनेवाला है। भगवन्नाम-कौमुदीकार भगवन्नामकी वन्दना करते हुए कहते हैं—

अहः संहरदखिलं सकृदुदयादेव सकललोकस्य।
तरणिरिव तिमिरजलधिं जयति जगन्मङ्गलं हरेर्नाम॥

'जैसे भगवान् सूर्य उदय होनेमात्रसे ही समस्त अन्धकारको नष्ट कर देते हैं, वैसे ही श्रीहरिका नाम एक बार उच्चारण करनेमात्रसे ही जीवमात्रके सम्पूर्ण पापोंका नाश कर देता है, अतः समस्त जगत्‌का मङ्गल करनेवाले श्रीहरिनामकी जय हो।'

भगवन्नामकी अनन्त महिमा है। यह केवल लोक-परलोक तथा भोग-मोक्षका ही परम साधन नहीं है, दुर्लभ भगवत्प्रेमकी प्राप्तिमें भी परम सहायक होता है। सभी ऋषि-मुनियों, संत-महात्माओंने नामकी महिमा गायी है। वेदोंसे लेकर आधुनिक संतोंकी तमाम वाणियाँ भगवन्नामकी महिमासे भरी

हैं। श्रीचैतन्यमहाप्रभु, गोस्वामी तुलसीदासजी आदिने तो केवल नामपर ही भरोसा करनेकी बात कही है। महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव कहते हैं—

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं
श्रेयस्कैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम्।
आनन्दाम्बुधिवर्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम्॥
नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः।
एतादृशी तव कृपा भगवन् ममापि
दुर्दैवमीदृशमिहाजनि नानुरागः॥

'भगवान् श्रीकृष्णका नाम-संकीर्तन चित्तरूपी दर्पणको परिमार्जित करनेवाला है, (दुःखमय) संसाररूपी महान् दावानलको बुझा देनेवाला है, कल्याणरूपी कुमुदिनीके विकासके लिये चन्द्रिकाका विस्तार करनेवाला है, पराविद्यारूपी वधूका जीवनरूप है, आनन्द-समुद्रको बढ़ानेवाला है, पद-पदपर पूर्ण अमृतका आस्वादन करानेवाला है और सब प्रकारसे बाहर-भीतर स्नान करानेवाला है—समस्त मलोंको— सारे पाप-तापोंको धोकर सम्पूर्ण आत्माको आनन्दसे सराबोर कर देनेवाला है। इन सात लक्षणोंवाला श्रीकृष्णनाम-संकीर्तन ही सर्वत्र विजयको प्राप्त होता है।

'हे भगवन्! जीवोंकी विभिन्न रुचियोंको देखकर ही आपने अपने राम, कृष्ण, मुकुन्द, गोविन्द, गोपाल, दामोदर आदि नाम प्रकट किये हैं और प्रत्येक नाममें अपनी समस्त शक्ति भी निहित कर दी है। साथ ही नाम-स्मरणके लिये किसी देश-काल-पात्रका कोई नियम भी नहीं रखा, अर्थात् कहीं भी, किसी समय भी कोई भी नाम-स्मरण कर सकता है। प्रभो! आपकी जीवोंपर इतनी अहैतुकी अनुकम्पा होनेपर भी मेरा ऐसा दुर्भाग्य है कि आपके नाममें अनुराग नहीं हुआ?

श्रीभगवन्नाम-कौमुदीकार श्रीलक्ष्मीधर नामनिष्ठाके लिये प्रार्थना करते हैं—

श्रीरामेति जनार्दनेति जगतां नाथेति नारायणे-
त्यानन्देति दयापरेति कमलाकान्तेति कृष्णेति च।
श्रीमन्नाममहामृताब्धिलहरीकल्लोलमग्नं मुहु-
र्मुह्यन्तं गलदश्रुनेत्रमवशं मां नाथ नित्यं कुरु॥
श्रीकान्त कृष्ण करुणामय कञ्जनाभ
कैवल्यवल्लभ मुकुन्द मुरान्तकेति।
नामावलीं विमलमौक्तिकहारलक्ष्मी-
लावण्यवञ्चनकरीं करवाणि कण्ठे॥

'हे श्रीराम, हे जनार्दन, हे जगन्नाथ, हे नारायण, हे आनन्दस्वरूप, हे दयापरायण, हे कमलाकान्त, हे श्रीकृष्ण, हे नाथ! ऐसे आपके जो सम्बोधन नामरूपी महान् सुधा-समुद्र हैं, उनकी प्रेमरूपी लहरियोंमें मुझे निमग्न कर दीजिये। विषयी लोगोंका जैसा मोह संसारके प्राणी-पदार्थोंमें होता है, आपके नाममें मेरा वैसा ही मोह उत्पन्न कर दीजिये। नाम-कीर्तन करते समय मेरे नेत्रोंसे प्रेमाश्रुओंकी अजस्र धारा बहती रहे और मैं कीर्तनानन्दमें विवश बना रहूँ। प्रभो! आप नित्य-निरन्तर मेरी यही स्थिति कर दीजिये।'

'श्रीकान्त, कृष्ण, करुणामय, कमलनाभ, कैवल्यवल्लभ, मुकुन्द, मुरारे—आपकी यह निर्मल मुक्ताहारकी शोभा-सुषमाको तिरस्कृत कर देनेवाली विमल नामावली हम सदा-सर्वदा अपने कण्ठमें धारण किये रहें—ऐसी कृपा कीजिये।'

श्रीचैतन्य महाप्रभु कहते हैं—

नयनं गलदश्रुधारया वदनं गद्गदरुद्धया गिरा।
पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नामग्रहणे भविष्यति॥

'श्रीकृष्ण! आपका नाम लेते ही मेरी आँखोंसे अश्रुओंकी अजस्र धारा बहने लगे, वदन गद्‌गद हो जाय, वाणी रुक जाय और शरीर रोमाञ्चित हो जाय—ऐसा कब होगा?' गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

भरोसो जाहि दूसरो सो करो।
मोको तो रामको नाम कलपतरु कलि कल्यान फरो॥
× × × ×
संकर साखि जो राखि कहौं कछु तौ जरि जीह गरो।
अपनो भलो राम-नामहि ते तुलसिहि समुझि परो॥

(विनय-पत्रिका २२६)

जपहिं नामु जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी॥
चहुँ जुग तीनि काल तिहुँ लोका। भए नाम जपि जीव बिसोका॥
नाम कामतरु काल कराला। सुमिरत समन सकल जग जाला॥
राम नाम कलि अभिमत दाता। हित परलोक लोक पितु माता॥
नामु राम को कलपतरु कलि कल्यान निवासु।
जो सुमिरत भयो भाँग तें तुलसी तुलसीदासु॥

(श्रीरामचरितमानस)

महात्मा गाँधीजीकी दैनिक प्रार्थनामें नाम-संकीर्तनका मुख्य स्थान था। (यद्यपि उनके अनुयायी कहलानेवाले आज गाँधीजीकी राम-धुनको छोड़ चुके हैं।) अतः नाम-संकीर्तनको 'चिल्लाना' बतलाना सर्वथा अज्ञताका ही सूचक है।

★

नामसे पापका नाश होता है

१—भगवान्‌के नामके बलपर पाप नहीं हो सकता, पापका नाश होता है। क्या सूर्यके प्रकाशके बलपर अन्धकार फैलाया जा सकता है? क्या जहाँ अन्धकार है, वहाँ सूर्यका प्रकाश भी है? इसी प्रकार जहाँ पाप है, वहाँ नाम या नामका बल नहीं है। वहाँ तो नामका अनादर या अवहेलना है। नाम और भगवान् दोनोंके प्रति द्रोहकी सूचना है। दूसरे शब्दोंमें वह महान् नामापराध है। इसका दण्ड है—'अन्धतमसाच्छन्न घोर नरक।'

नाम वह अग्नि है, जो पापराशिके ईंधनको जलाकर भस्म कर देती है। उस आगसे पापका नया ईंधन नहीं निकल सकता। सूर्यका प्रकाश रात्रिके गहन अन्धकारको मिटा देता है। उस समय नूतन अन्धकारकी सृष्टि नहीं हो सकती। जो नामकी शरण लेता है, वह भगवान्‌के प्रति श्रद्धालु होता है। वह पापके बन्धनसे छूटनेके लिये भगवान्‌की शरणमें जाता है। उसको पापसे छूटनेकी चिन्ता रहती है। उसके मनमें पाप करनेका द्विगुण उत्साह नहीं हो सकता। वह पुराने अभ्यासवश विवश होकर पाप कर सकता है, फिर सावधान होता है, फिर फिसलता है। इस प्रकारकी दशा उसकी हो सकती है, किंतु वह पापसे दूर रहनेके लिये ही प्रयास करता है। पाप हो जानेपर उसके मनमें बड़ी ग्लानि होती है। वह अपार वेदनाका अनुभव करता है। प्रभुसे रो-रोकर प्रार्थना करता है कि मुझे पापोंसे बचाइये। ऐसे साधकको भगवान् बचा लेते हैं। वह पहलेका पतित है, भगवान्‌की शरणमें आकर उनके नामकी गङ्गामें नहाकर पवित्र हो गया है। अतएव भगवान् पतित-पावन हैं। यदि भगवान्‌की शरणमें आकर भी कोई पापाचारी, पतित बना रह जाय, तभी उनकी पतित-पावनतामें संदेह किया जा सकता है। मनुष्य पहले कितना ही दुराचारी क्यों न रहा हो, यदि नाम और भगवान्‌की शरण ग्रहण कर लेता है तो भगवान्‌के शब्दोंमें उसे 'साधु' ही मानना चाहिये, क्योंकि अब उसने ठीक रास्ता पकड़ लिया है, उत्तम निश्चयको अपना लिया है—

साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः।

अब वह पापी नहीं रहेगा। पापमें उसकी प्रवृत्ति नहीं होगी। उसको तो अब शीघ्र ही महात्मा बनना है—

'क्षिप्रं भवति धर्मात्मा ॥'

पर जो भगवान्‌का नाम लेकर पाप करता है, वह तो असुरों और दैत्योंकी भाँति भगवान्‌के साथ खुला विद्रोह करता है। असुरों और दैत्योंने भगवान् विष्णुको अपना शत्रु समझा था। अतः वे उनके स्वरूपभूत धर्मपर कुठाराघात करनेके लिये जान-बूझकर पापको बढ़ावा देते थे। पापाचार ही

उनकी युद्ध-घोषणा या चुनौती थी। आज भी जो लोग नाम लेकर जान-बूझकर पाप करते हैं, वे नामापराधी असुर और दैत्योंकी कोटिमें हैं। समाजमें पाप और भ्रष्टाचार फैलाना उन्हींका काम है। भगवन्नामका आश्रय लेनेवाले भक्त तो स्वभावसे ही धर्मपालक और धर्मप्रचारक होते हैं।

२—'भगवन्नाममें पाप-नाश करनेकी जितनी शक्ति है, उतनी पापी मनुष्योंमें पाप करनेकी नहीं है। यह कथन सर्वथा सत्य है। नामके साथ भगवान्की शक्ति है—जो अपरिमेय, असीम है। मनुष्य क्षुद्रतम जीव है, फिर पापी जीव तो और भी निकृष्ट है, उसमें शक्ति ही क्या है ? इससे यह समझना चाहिये कि नामकी शक्ति बहुत बड़ी है, उससे हमारा उद्धार हो जायगा। यदि आजतक हमसे कोई शुभ कर्म नहीं बन सका, सदा पाप-ही-पाप हुआ है, तो भी हताश होने, घबरानेकी बात नहीं है, शीघ्र-से-शीघ्र हमें नामकी शरण लेनी चाहिये। नाम पापका विरोधी है, अतः उसकी शरण लेनेका अर्थ है पापसे मुँह मोड़ लेना। नाव और नाविकको अपना शरीर सौंप दिया जाय, तभी हम सागर या सरिताके पार हो सकते हैं। एक पैर जमीनपर और एक नावमें रखें तो गिरकर डूबना ही है। इसी प्रकार नामको पूर्णतया आत्मसमर्पण करनेवाला ही नामका बल रखता है। नाम और पाप दोनोंको चाहनेवाला डूबता है। वास्तवमें पापको चाहनेवाला नामकी मखौल उड़ाता है, वह नामका बल मानता ही नहीं। जो पूर्णतया नामनिष्ठ हो जाता है, उसके समस्त पाप भस्म हो जाते हैं—चाहे वे जान-बूझकर किये गये हों या अनजानमें।

३—नाम लेनेमें किसी विधिकी अपेक्षा नहीं, हँसी, भय, क्रोध, द्वेष, काम या स्नेहसे भी नाम लेनेपर उस नामसे उसके पूर्वकृत पाप अवश्य नष्ट हो जाते हैं। परंतु जब वह अपना यह पेशा बना लेता है कि 'मैं पाप करूँगा और नाम लेकर उन्हें नष्ट कर दूँगा', तब वह नामापराधी हो जाता है। उस दशामें नामापराध नामक नूतन और बड़ा भयङ्कर पाप वह कर बैठता है। यही उसको डुबो देता है। इससे बचना चाहिये। कारणका संयोग मिल जानेपर कार्य हो ही जाता है। यदि हँसी-मजाक, क्रोध, द्वेषसे भी किसीके

शरीरसे आगकी चिनगारी छुआ दी जाय तो उसमें जलन होगी ही। बालकको विषके गुणका ज्ञान नहीं है, उसके प्रभावपर उसकी श्रद्धा या विश्वास नहीं है तो भी उसे खानेपर उसकी मृत्यु हो ही जायगी। इसी प्रकार नामोच्चारणमात्रसे पापका नाश होता है—भले वह हँसीमें, भयसे या द्वेषसे ही लिया जाय। अनिच्छासे या मनको और बातोंमें लगाये रखकर भी यदि हम भोजन करते हैं तो भी उससे भूख तो मिट ही जाती है, इसी प्रकार अन्यमनस्क होकर भी नाम लेनेसे पाप-नाश हो ही जाता है। हाँ, जब हम पाप करके नामसे उसे मिटा देनेकी भावना रखकर बार-बार नाम लेते और पाप करते रहेंगे तो एक नवीन अपराध बनता जायगा, जिसे हम 'नामापराध' कहते हैं। यह समस्त पापोंसे बढ़कर है। नामापराधसे छुटकारा भी तभी मिलता है, जब पापसे सर्वथा बचे रहने तथा भविष्यमें 'नामापराध' न करनेकी दृढ़ प्रतिज्ञा मनमें लेकर एकनिष्ठ होकर भगवन्नामोंका अधिकाधिक जप किया जाय। क्योंकि **'नामापराधयुक्तानां नामान्येव हरन्त्यघम्'** नामापराधका पाप भी नाम ही हरता है।

★

महामना मालवीयजीके कुछ भगवन्नाम-सम्बन्धी संस्मरण

(१) महामना एक बार गोरखपुर पधारे थे और मेरे पास ही दो-तीन दिन ठहरे थे। उनके पधारनेके दूसरे दिन प्रातःकाल मैं उनके चरणोंमें बैठा था। वे अकेले ही थे। बड़े स्नेहसे बोले—"भैया! मैं तुम्हें आज एक दुर्लभ तथा बहुमूल्य वस्तु देना चाहता हूँ। मैंने इसको अपनी मातासे वरदानके रूपमें प्राप्त किया था। बड़ी अद्‌भुत वस्तु है। किसीको आजतक नहीं दी, तुमको दे रहा हूँ। देखनेमें चीज छोटी-सी दीखेगी, पर है महान् 'वरदान-रूप'।" इस प्रकार प्रायः आधे घंटेतक वे उस वस्तुकी महत्तापर बोलते गये। मेरी जिज्ञासा बढ़ती गयी। मैंने आतुरतासे कहा—"बाबूजी! जल्दी दीजिये, कोई आ जायँगे।"

तब वे बोले—"लगभग चालीस वर्ष पहलेकी बात है। एक दिन मैं अपनी माताजीके पास गया और बड़ी विनयके साथ उनसे यह वरदान माँगा कि 'मुझे आप ऐसा वरदान दीजिये', जिससे मैं कहीं भी जाऊँ सफलता प्राप्त करूँ।"

माताजीने स्नेहसे मेरे सिरपर हाथ रखा और कहा—"बच्चा! बड़ी दुर्लभ चीज दे रही हूँ। तुम जब कहीं भी जाओ तो जानेके समय 'नारायण-नारायण' उच्चारण कर लिया करो। तुम सदा सफल होओगे।" मैंने श्रद्धा-पूर्वक सिर चढ़ाकर माताजीसे मन्त्र ले लिया। हनुमानप्रसाद! मुझे स्मरण है, तबसे अबतक मैं जब-जब चलते समय 'नारायण-नारायण' उच्चारण करना भूला हूँ, तब-तब असफल हुआ हूँ। नहीं तो, मेरे जीवनमें—'चलते समय 'नारायण-नारायण' उच्चारण कर लेनेके प्रभावसे कभी असफलता नहीं मिली। आज यह महामन्त्र परम दुर्लभ वस्तु मेरी माताकी दी हुई महान् वस्तु तुम्हें दे रहा हूँ। तुम इससे लाभ उठाना।' यों कहकर महामना गद्गद हो गये।

मैंने उनका वरदान सिर चढ़ाकर स्वीकार किया और इससे बड़ा लाभ उठाया। अब तो ऐसा हो गया है कि घरभरमें सभी इसे सीख गये हैं। जब कभी घरसे बाहर निकला जाता है, तभी बच्चे भी 'नारायण-नारायण' उच्चारण करने लगते हैं। इस प्रकार रोज ही, किसी दिन तो कई बार 'नारायण' की और साथ ही पूज्य माताजीकी पवित्र स्मृति हो जाती है।

(२) महामनाके एक पुत्र बड़े अर्थ-संकटमें थे। उनको महामनाने यह लिखा 'तुम आर्त होकर विश्वाससे गजेन्द्रस्तुतिका पाठ करो, इससे तुम्हारा संकट दूर हो जायगा।' फिर एक पत्रमें उनको लिखा—'भगवान्‌पर विश्वास रखो, धैर्य मत छोड़ो और गजेन्द्रस्तुतिका आर्तभावसे विश्वासपूर्वक पाठ करो।* मैं एक बार नाकतक ऋणमें डूब गया था, गजेन्द्रस्तुतिके पाठसे मैं ऋणमुक्त हो गया, तुम भी इसका आश्रय लो।' अपने कष्टमें पड़े पुत्रको बिना पूर्ण विश्वासके कौन पिता ऐसा लिख सकता है।

******

* श्रीमद्भागवतके अष्टम स्कन्धके तीसरे अध्यायमें यह स्तुति है। गीताप्रेससे अलग भी प्रकाशित हो चुकी है।

महात्मा गांधीजीके भगवन्नाम-सम्बन्धी संस्मरण

(१)

पुरानी बात है—बंबईमें श्रीबालूरामजी 'रामनामके आढ़तिया' आये हुए थे। वे लोगोंको नाम-जप करनेका नियम दिलवाते और अपनी बहीमें उनकी सही करवा लेते थे। लाखों सही करवायी होंगी उन्होंने। बहियोंके ढेर थे उनके पास। उनकी बहीमें सभी सम्प्रदायों और मतोंके हस्ताक्षर मिलेंगे। यहाँतक कि मुसलमान, ईसाई, पारसी आदिसे भी वे उनके अपने मत और विश्वासके अनुसार प्रतिदिन प्रभु-नाम लेने या प्रभु-प्रार्थना करनेकी प्रतिज्ञा करवाया करते थे। यही उनकी आढ़त थी। उन दिनों पूज्यपाद महामना मालवीयजी महाराज और पूज्य महात्माजी—दोनों ही बंबई पधारे हुए थे। आढ़तियाजीने सेठ जमनालालजीसे तो सही करवा ही ली थी, उन्होंने कहा—'महात्माजी और श्रीमालवीयजीके पास भी मुझे ले चलो। श्रीजमनालालजीने मुझको बुलवाया और हम तीनों लेबरनम रोडपर महात्माजीके पास गये। सेठजीने आढ़तियाजीका परिचय कराया। बापू बहुत ही प्रसन्न हुए और हँस-हँसकर आढ़तियाजीकी बही देखने और उनकी तारीफ करने लगे। आढ़तियाजीने बही खोलकर सामने रख दी और सही करनेका अनुरोध किया। इसपर महात्माजीने मुसकराकर कहा—'जब मैं अफ्रीकामें था, तब तो राम-नामकी माला बहुत जपा करता था, परंतु अब तो दिन-रात जो कुछ करता हूँ, सब राम-नामके लिये ही करता हूँ, इसलिये मैं खास समय और संख्याके लिये हस्ताक्षर क्यों करूँ?' आढ़तियाजीको बापूकी बात सुनकर संतोष हुआ। फिर हमलोग राजाबहादुर श्रीगोविन्द-लालजी पित्तीके बँगलेपर, जहाँ पूज्य मालवीयजी ठहरे हुए थे, गये। मालवीयजी सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने आढ़तियाजीकी बहीमें लिख दिया—'मैंने जबसे होश सँभाला, भगवान्‌का नित्यप्रति स्मरण करता हूँ और जबतक जीऊँगा, करता रहूँगा।'

(२)

'कल्याण' का 'भगवन्नामाङ्क' निकलनेवाला था। सेठ जमनालालजीको साथ लेकर मैं बापूके पास गया राम-नामपर कुछ लिखवानेके लिये। बापूने हँसकर कहा—'जमनालालजीको क्यों साथ लाये। क्या मैं इनकी सिफारिश मानकर लिख दूँगा ? तुम अकेले ही क्यों नहीं आये ?' सेठजी मुसकराये। मैंने कहा—'बापूजी ! बात तो सच है, मैं इनको इसीलिये साथ लाया कि आप लिख ही दें।' बापू हँसकर बोले, 'अच्छा, इस बार माफ करता हूँ, आइंदा ऐसा अविश्वास मत करना।' फिर कलम उठायी और तुरंत नीचे लिखा संदेश लिख दिया—

'नामकी महिमाके बारेमें तुलसीदासने कुछ भी कहनेको बाकी नहीं रखा है। द्वादशाक्षर-मन्त्र और अष्टाक्षर-मन्त्र—ये सब इस मोहजालमें फँसे हुए मनुष्यके लिये शान्तिप्रद हैं। इसमें कुछ भी शङ्का नहीं है। जिससे जिसको शान्ति मिले उस मन्त्रपर वह निर्भर रहे। परंतु जिसको शान्तिका अनुभव ही नहीं है और जो शान्तिकी खोजमें है, उसको तो अवश्य राम-नाम पारसमणि बन सकता है। ईश्वरके सहस्रनाम कहे हैं, उसका अर्थ यह कि उसके नाम अनन्त हैं, गुण अनन्त हैं। इसी कारण ईश्वर नामातीत और गुणातीत भी है। परंतु देहधारीके लिये नामका सहारा अत्यावश्यक है और इस युगमें मूढ़ और निरक्षर भी रामनामरूपी एकाक्षर-मन्त्रका सहारा ले सकता है। वस्तुतः राम उच्चारणमें एकाक्षर ही है और ॐकार तथा राममें कोई फरक नहीं है। परंतु नाम-महिमा बुद्धिवादसे सिद्ध नहीं हो सकता है। श्रद्धासे अनुभव-साध्य है।'

संदेश लिखकर मुसकराते हुए बापू बोले—'तुम मुझसे ही संदेश लेने आये हो जगत्को उपदेश देनेके लिये या खुद भी कुछ करते हो ? रोज नाम-जपका नियम लो तो तुम्हें संदेश मिलेगा, नहीं तो मैं नहीं दूँगा।' मैंने कहा—'बापूजी ! मैं कुछ जप तो रोज करता ही हूँ, अब कुछ और बढ़ा दूँगा।' बापूने यह कहकर कि—'भाई, बिना कीमत ऐसी कीमती चीज थोड़े

ही दी जाती है'—मुझे संदेश दे दिया। सेठजीको कुछ बातें करनी थीं। वे ठहर गये। मैंने चरण-स्पर्श किया और आज्ञा प्राप्त करके मैं लौट आया।

(३)

मैं बंबईसे राजपूताना जा रहा था। अहमदाबादमें बापूके दर्शनार्थ रुक गया। वेटिंगरूममें सामान रखकर साबरमती-आश्रम पहुँचा। दोपहरका समय था। बापू बैठे कुछ लिख रहे थे। मैंने जाकर चरणोंमें प्रणाम किया। बापूने सिरपर हाथ रखकर पास बैठा लिया। मेरे हाथमें 'कल्याण'का अङ्क था। वे उसे लेकर देखने लगे। 'कल्याण'के द्वारा प्रतिवर्ष कुछ समयके लिये षोडशाक्षर मन्त्रके जापके लिये ग्राहकोंसे अनुरोध किया जाता है और जपका समय पूरा हो जानेपर जप किये जानेवाले स्थानोंके नाम तथा जपकी संख्या 'कल्याण' में छापी जाती है। उस अङ्कमें वह संख्या छपी थी। संख्या मुझे याद तो नहीं है, परंतु दस करोड़से कुछ ज्यादा ही थी। बापूने उसीको पढ़ा और सब बातें सुनीं। सुनकर बहुत ही संतुष्ट हुए, कहा—'तुम यह बहुत अच्छा करा रहे हो। इतने जप करनेवालोंमें कुछ भी यदि हृदयसे जप करनेवाले निकलेंगे तो उनका तथा देशका बड़ा कल्याण होगा। फिर हँसकर बोले—'मैं भी जप करता हूँ, परंतु मैं तो तुम्हें सूचना नहीं भेजूँगा। देखो, यह मेरी माला।' इतना कहकर तकियेके नीचेसे माला निकालकर दिखायी और बोले—'मैं रात-विरात चुपके-चुपके जपा करता हूँ।'

माला पुरानी हो गयी थी, कुछ मनिये टूट गये थे। वृन्दावनसे आयी हुई तुलसीकी दो मालाएँ मेरी जेबमें थीं। मैंने प्रार्थना की—'बापूजी ! माला टूट गयी है, मेरे पास वृन्दावनसे आयी हुई दो माला हैं। आप इनमेंसे एक ले लें।' बापूने कहा—'तो तुम मुझे माला देने आये हो?' मैंने कहा—'नहीं, मैं तो दर्शन करने आया था। यह तो प्रसङ्गवश बात हो गयी।' बापूने कृपा करके माला ले ली। मैं कुछ देर बैठा। बापूने और भी कई बातें कहीं। मुझे ठीक याद नहीं आ रही हैं। मुझे उसी शामको जाना था, इसलिये मैं कुछ देरके बाद वहाँसे स्टेशन चला आया।

★

पत्रोंमें नाम-जपके विविध प्रसङ्ग

नामसे पाप-नाश कैसे सम्भव है।

प्रार्थना और भगवन्नाममें बड़ा बल है। एक नामसे पापोंका अशेष नाश हो सकता है—इसको केवल कल्पना मत मानो। ज्ञानीलोग कहते हैं—'ज्ञान प्राप्त होनेपर, ब्रह्मका स्वरूप जान लेनेपर मुक्ति हो जाती है।' यह बात सर्वथा सत्य भी है, परंतु इसमें प्रमाण क्या है? शास्त्रके वचन ही तो हैं? ऐसे कर्म-बन्धनमें सब लोग फँसे हैं कि बिना इच्छाके भी कर्मोंका फल बाध्य होकर भोगते हैं—उस कर्मबन्धनकी सारी ग्रन्थियाँ ब्रह्मको जानते ही टूट जाती हैं। अतएव 'ज्ञानमात्रसे बन्धनोंका नाश होना' जैसे सम्भव है, वैसे ही 'भगवान्के नाममात्रसे पापोंका नाश' क्यों सम्भव नहीं है? इसमें भी शास्त्र-प्रमाण है। वस्तुतः दोनों ही बातें सत्य हैं। अतएव मनमें विश्वास करके भगवन्नामकी शरण ग्रहण करनेपर संकटोंका नाश होना कोई बड़ी बात नहीं है।

अन्तःकरणकी शुद्धिका उपाय

आपने अन्तःकरण शुद्ध होनेका सुगम उपाय पूछा है; इसके लिये सबसे सुगम उपाय है—भगवान्के नामोंका निरन्तर जप। अन्तःकरण अशुद्ध होता है—पाप-वासनाओंसे, आसक्ति, ममता, अहंता आदि दोषोंसे—ये सब अन्तःकरणके मैल हैं। भगवन्नामके पावन जलसे ही यह मैल धुल पाती है। भगवान् सूर्य जिस प्रकार रातके अन्धकारको नष्ट कर देते हैं, उसी प्रकार भगवान्का नाम, दोष, दुःख और दुराशाका दलन कर डालता है। तुलसीदासजी कहते हैं—

सहित दोष दुख दास दुरासा। दलइ नामु जिमि रबि निसि नासा॥
जन मन अमित नाम किए पावन। नाम सकल कलि कलुष नसावन॥

विश्वासपूर्वक नाम-जपसे रोगनाश

सबसे बड़ी दवा है विश्वासके साथ भगवान्का नाम लेना। श्रीधन्वन्तरिजीके वाक्य हैं—

अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात् ।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥

'अच्युत, अनन्त, गोविन्द—इन नामोंके उच्चारणरूपी औषधसे सब रोगोंका नाश होता है—यह मैं सत्य-सत्य कहता हूँ।'

अतएव आप फलमें सन्देहरहित होकर सरल विश्वासके साथ **'अच्युताय नमः, अनन्ताय नमः, गोविन्दाय नमः'**—इन नामोंका जप कीजिये। आपके पतिदेव कर सकें तो उनसे भी कराइये। अवश्य लाभ होगा। लेकिन दुःख-नाशका ही नहीं, भयंकर-से-भयंकर भवरोगके नाशका भी यही सर्वोत्तम उपाय है। इसपर विश्वास कीजिये।

साधकोंसे

भगवान्‌के नाममें पूरा आनन्द नहीं आता, इसका कारण यही है कि भगवान्‌में अभीतक प्रियतम-बुद्धि नहीं है। जिसमें प्रियतम-बुद्धि हो जाती है, उसके नामकी तो बात ही निराली है, उसकी फटी जूतीका चिथड़ातक अत्यन्त प्यारा लगता है। भगवान्‌में प्रियतम-बुद्धि हो जानेपर उनके सारे जगत्‌में—भयानक जगत्‌में भी उन्हींके नाते अत्यन्त प्रेम हो जायगा और सभी वस्तुएँ आनन्ददायिनी बन जायँगी, क्योंकि सबमें फिर उन्हीं परम प्रियतमका सम्बन्ध दीख पड़ेगा; सभी उनके कर-कमलोंसे संस्पृष्ट जान पड़ेगी। फिर नाम परम मधुर हो जायगा। नाम सुननेवाला परम प्रिय और परम पूज्य जान पड़ेगा। उनकी स्मृति करा देनेवालेके चरणोंमें चित्त लुट पड़ेगा।

सेवा और नाम-जप

जहाँतक हो सके भगवान्‌के नामका आश्रय लेकर अधिक-से-अधिक भगवन्नाम-स्मरण करना चाहिये। मेरी समझसे—यदि सेवाकी वासना मनमें होगी तो भगवन्नाम-ग्रहणके द्वारा जगत्‌की सेवा भी कम नहीं होगी, यह विश्वास करना चाहिये। कलियुगमें यही एकमात्र मार्ग है।

भगवान्‌की कृपापर निर्भर करके, बस, उनका नाम लेते रहिये। इस कालमें जीवोंके लिये यही सर्वोत्कृष्ट साधना है। दूसरे सब साधन तो इस

सुधामयी बूटीके अनुपानमात्र हैं।

सच पूछिये तो यह कहना भी अत्युक्ति न होगा कि इस युगमें जगत्‌के उद्धारकी चेष्टा तो बस, अहंकारकी सृष्टिमात्र होगी।

नाम-जप और दैवी सम्पत्ति

भगवान्‌के नाम और भगवद्भक्तिकी महिमा अनन्त है। आप और हम तो क्षुद्र हैं—महापुरुष भी इनकी महिमा पूरी-पूरी नहीं गा सकते, परन्तु भाईसाहब ! आप जिस ढंगसे भक्ति और भगवन्नामका माहात्म्य बतलाते हैं, वह मुझे पसंद नहीं है। मैं तो मानता हूँ, भगवन्नामसे पापका लेश भी नहीं रहता। फिर यह कैसे स्वीकार करूँ कि भगवन्नामका सहारा लेकर दुष्कर्म करते रहना जान-बूझकर भी उनसे हटनेका प्रयास और अभिलाषा न करना उचित है ? मेरी समझसे भगवद्भक्तिके साथ दैवी सम्पत्तिका अनिवार्य संयोग है।

यह सत्य है कि अधिक पाप करनेवालोंको भी भगवन्नाम-कीर्तन और भक्ति करनेका अधिकार है। भगवान्‌का द्वार पापियोंके लिये बन्द नहीं है तथा भगवन्नाम और भगवद्भक्तिसे पापी भी शीघ्र ही पुण्यात्मा-महात्मा भी बन सकते हैं, परन्तु जिनके मनमें बुरे कर्मोंसे जरा भी ग्लानि नहीं और जो इसलिये भगवन्नाम लेते हैं कि उनके पाप ढके रहें या पाप करनेमें उन्हें सुविधा मिल जाय, उनके लिये बहुत विचारणीय बात है। यह सत्य है कि भगवन्नाममें पापनाश करनेकी शक्ति पापीके पाप करनेकी शक्तिसे कहीं अधिक है और अन्तमें उसके पापोंका नाश करके भगवन्नाम उसे तार देगा; परन्तु जान-बूझकर पाप करनेके लिये ही नाम लेना भगवद्भक्तिका आदर्श क्योंकर माना जा सकता है ?

नाम-जपसे जीवनकी सफलता

और कुछ न हो सके तो उनकी कृपापर विश्वास करके उनके नामका जप, स्मरण और कीर्तन आरम्भ कर दीजिये। भगवन्नाममें महान् शक्ति है। वह बहुत शीघ्र पाप-तापका नाश करके भगवान्‌को मिला देता है। वस्तुतः नाम और नामी एक ही हैं। नामका प्रेम हो जानेपर तो संसारमें सर्वत्र

श्रीभगवान्‌की ही झाँकी होने लगती है। फिर संसारमें ऊँच-नीचका कोई भेद नहीं रह जाता। हर समय और हर स्थानमें नामप्रेमी भक्त प्रेमपूर्वक भगवान्‌का नाम-गान करता हुआ स्वयं पवित्र होता है और जगत्‌को पवित्र करता है (**'भुवनं पुनाति'**)। श्रीमद्भागवतमें कहा है—पृथ्वीमें जो भगवान्‌के जन्मकी और लीलाओंकी मङ्गलमयी कथाएँ प्रसिद्ध हैं, उनको सुनते रहना चाहिये और उन गुणलीलाओंका स्मरण करानेवाले नामोंका लज्जा-संकोच छोड़कर गान करते रहना चाहिये। अन्य कहीं भी आसक्ति न रखकर संसारमें विचरना चाहिये। जो इस प्रकार भगवान्‌के दिव्य जन्म-कर्मकी कथाओंको तथा उनके कल्याणमय नामोंको सुनने और गानेका व्रत ले लेता है, उसके हृदयमें अपने परम प्रियतम प्रभुके नाम-कीर्तनसे प्रेमका अंकुर उत्पन्न हो जाता है। उसका चित्त द्रवित हो जाता है और लोक-साधारणकी स्थितिसे ऊपर उठकर वह प्रेमकी मादकतामें कभी खिलखिलाकर हँसने लगता है और कभी फूट-फूटकर रोने लगता है। कभी ऊँचे स्वरसे भगवान्‌को पुकारता है तो कभी मधुर स्वरसे उनके गुणोंका गान करने लगता है और कभी-कभी आनन्दमत्त हो लोक-लाज छोड़कर नाचने लगता है।

भगवन्नामकी महिमा

मालापर नाम-जपसे डरनेकी क्या आवश्यकता है? ज्यादा नाम लेनेका अभिमान हो जायगा, इस डरसे जप न करना तो बड़ी भूलकी बात है। नाम-जप करनेसे चित्तके दुर्गुणोंका नाश होता है और सद्गुण अपने-आप आते हैं। अभिमानसे जरूर बचना चाहिये, पर भजनसे कभी नहीं हटना चाहिये। भगवान्‌के नामकी शक्तिपर विश्वास करके यह निश्चय करना चाहिये कि नाम-जपसे मेरे मनमें अभिमान आदि दोष कभी उत्पन्न नहीं हो सकते, वरं मेरे मनमें जो पहलेके दोष हैं, उन सबका भी नाश हो जायगा। नामका बड़ा प्रभाव है। भगवन्नामसे सारे पाप-ताप सहज ही नष्ट हो जाते हैं और श्रद्धापूर्वक नाम लेनेपर तो असम्भव भी सम्भव एवं अमङ्गल भी मङ्गलरूप बन जाते हैं।

शिवपुराणमें कहा है—

अग्निश्च शीततां यातो जलं च स्थलतां गतम्।
स्थलं च जलतां यातं विषं चामृततां गतम्॥
शस्त्राणि पुष्पभावं च हरेर्नाम्नश्च कीर्तनात्।

(विश्वेश्वरसंहिता १०।३६)

'श्रीहरिनामकीर्तनसे अग्नि शीतल हो जाता है, जल स्थलरूपको प्राप्त हो जाता है, स्थल जल बन जाता है, विष अमृतमें परिणत हो जाता है और शस्त्रसमूह पुष्पके समान कोमल हो जाते हैं।'

फिर कलियुगमें तो भगवान्‌का नाम ही जीवके लिये एक आधार है—

है हरि-नामको आधार।
और या कलिकाल नाहिन रह्यो विधि व्यौहार॥
नारदादि सुकादि संकर कियो यहै विचार।
सकल श्रुति दधि मथत काढ्यो इतोई घृतसार॥
दसहु दिसि गुन करम रोक्यो, मीनकों ज्यों जार।
सूर हरिको सुजस गावत, जेहि मिटे भवभार॥

कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना। एक अधार राम गुन गाना॥

कलि नाम काम तरु रामको।
दलनिहार दारिद दुकाल दुख, दोष घोर घन घामको॥
कृतजुग त्रेताँ द्वापर पूजा मख अरु जोग।
जो गति होइ सो कलि हरि नाम ते पावहिं लोग॥

इन सब वचनोंपर विश्वास करके भगवन्नामका जप अवश्य करना चाहिये। इसमें मङ्गल-ही-मङ्गल है।

भगवन्नामका महत्त्व

विशुद्ध होकर तथा सारे पापोंको छोड़कर जो भगवान्‌का नाम लिया जाता है, उसका तो कहना ही क्या है। हमलोगोंको यही आदर्श सामने रखना चाहिये कि भगवन्नाम लेनेपर हमारे हृदयमें पाप-संस्कारका लेश भी

न रहे, परन्तु जो लोग अभी पापसे नहीं छूटे हैं; इच्छा न होनेपर भी जिनके मन-तनसे पापाचरण बन जाते हैं, वे क्या करें ? उनके पाप-नाशका उपाय भी तो नाम-जप ही है। अतएव पाप-नाश होनेके बाद नाम-जप करेंगे, ऐसी धारणा ठीक नहीं। पहले नाम-जप करके पापोंका नाश कर लीजिये, फिर विशुद्ध होकर परम प्रेमपूर्वक नाम-जपका विलक्षण आनन्द लूटिये। भगवान्‌के नाममें विलक्षण पापनाशिनी शक्ति है। जिस किसी प्रकार भी भगवान्‌के नामका जीभसे स्पर्श हो जाना चाहिये, उससे पाप-नाश होते हैं।

स्कन्दपुराणमें आता है—

हास्याद् भयात् तथा क्रोधाद् द्वेषात् कामादथापि वा।
स्नेहाद्वा सकृदुच्चार्य विष्णोर्नामाघहारि च॥

(वैशाख० २१। ३६)

हँसीसे, भयसे, क्रोधसे, द्वेषसे, कामसे या स्नेहसे—'किसी भी प्रकारसे एक बार भगवान्‌के नामका उच्चारण पापोंका नाश करनेवाला होता है।'

जप परम साधन है

गायत्री और नामका जप करते काफी समय हो गया, सो बड़ा अच्छा है। इससे बढ़कर और है ही क्या ? साधनसे कभी भी ऊबना नहीं चाहिये। ठीक रास्ता जाननेकी इच्छा लिखी सो आप इस गायत्री तथा नाम-जपको क्या बेठीक रास्ता मानते हैं ? यही ठीक रास्ता है, इसीपर विश्वासपूर्वक चलते रहें। इस समय चाहे आपको इससे लाभ न दीखे, पर लाभ अवश्य हुआ है और होगा। जप चलता है, यही एक बड़ा लाभ है। जपके लाभको तो कोई रोक नहीं सकता। मनुष्यके जीवनमें उसके द्वारा भगवान्‌का स्मरण और जप होता रहे, यही तो करना है। भगवान्‌ने जो जप-यज्ञको अपना स्वरूप बतलाया है। **'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि।'** एकान्त मिले या न मिले, उपांशु हो या न हो—इसकी चिन्ता छोड़कर जिस तरहसे भी हो, जपका क्रम चालू रहने दें। अपने साध्य और साधनमें कभी संदेह नहीं करना चाहिये। चित्तमें नाना प्रकारके खयाल दौड़ाकर वहम न पैदा होने दें।

भगवान्‌के नामोंमें कोई छोटा-बड़ा नहीं

भगवान्‌के नामोंमें छोटा-बड़ा कोई नहीं है। जिसको जिस नाममें रुचि हो, जो प्रिय लगे वह उसीका जप-कीर्तन करे, परन्तु दूसरे किसीको भी छोटा न समझे, न किसीकी निन्दा करे। जैसे एक ही भगवान्‌के अनेक स्वरूप हैं, वैसे ही अनेक नाम भी हैं। भगवान् दो नहीं हैं। जो भगवान्‌के जिस नाम-रूपका उपासक हो, वह उसी नाम-रूपकी उपासना करे, पर यह समझे कि दूसरे जितने नाम-रूप हैं, सब मेरे ही भगवान्‌के हैं। जो दूसरे नाम-रूपोंको किसी दूसरे भगवान्‌के मानकर उनकी निन्दा करता है, वह अपने ही भगवान्‌को सीमित और अल्प बनाता है। श्रीकृष्णका उपासक यह माने कि श्रीराम, श्रीविष्णु, शिव, गणेश, दुर्गा, सूर्य—मुसलमानोंके अल्लाह, खुदा—ईसाइयोंके परम पिता सब मेरे श्रीकृष्णके स्वरूप हैं और उन्हींके नाम हैं। इसी प्रकार दूसरे नाम-रूपोंके उपासक भी मानें। ऐसा माननेपर न तो अनन्यतामें बाधा आती है, न सम्प्रदायके नामपर राग-द्वेष बढ़ता है और न भगवान्‌के नामपर भगवान्‌की अवज्ञा ही होती है। अतएव हमलोगोंको चाहिये कि हम अपने इष्टका नाम-जप करें और दूसरोंके इष्टको भी अपने ही इष्टका स्वरूप समझें, क्योंकि भगवान् एक ही हैं।

निःसंकोच नाम-जप कीजिये

आपने लिखा था कि भजन तो करता हूँ; पर माला न रखनेपर तो बहुत भूल हो जाती है और माला रखनेपर संकोच होता है। कुछ मित्रलोग मजाक करते हैं और कुछ लोग भक्त समझकर सम्मान करने लगते हैं। 'अतएव क्या करूँ ?' इसके उत्तरमें निवेदन है कि यदि माला रखे बिना भूल होती है तो सारा संकोच छोड़कर अवश्य माला रखनी चाहिये। इसमें लज्जा-संकोचकी क्या बात है। मित्रलोग मजाक करते हैं तो करने दीजिये। मजाक करनेमें उनको सुख मिलता है तो आनन्दकी ही बात है। आपकी किसी क्रियासे मित्रोंका मनोरञ्जन हो, उन्हें सुख मिले, यह तो आपके लिये सुखकी बात है। पर कहीं ऐसा तो नहीं है कि संकोच तो आपका अपना मन ही करता हो और अपना दोष छिपानेके लिये मित्रोंके मजाककी बात गौण

होनेपर भी मनने उसको प्रधानता दे दी हो, ऐसा हो तो आपको सावधान हो जाना चाहिये और मनको समझा देना चाहिये कि इसमें लज्जाकी बात तनिक भी नहीं है। लज्जा आनी चाहिये झूठ बोलनेमें, गंदी जुबान निकालनेमें, निन्दा-चुगली या व्यर्थकी बात करनेमें, किसीका अहित करनेमें, क्रोध और लोभवश होनेमें, परस्त्रीके प्रति बुरी नजरसे देखने या मनमें भी बुरा भाव लानेमें, दूसरेकी वस्तुको—किसीके स्वत्वको हरण करनेमें, चोरी, ठगी और छल-कपट करनेमें तथा दूसरे-दूसरे बुरे काम तन-मन-वचनसे करनेमें। मनुष्यका बड़ा दुर्भाग्य है कि वह इन सब कामोंके करनेमें तो तनिक भी नहीं लजाता, बल्कि कोई-कोई तो ऐसे कार्योंमें गौरवतक मानते हैं तथा गर्व करते हैं, पर भगवान्‌का नाम लेने या भजन करनेमें उन्हें लज्जा आती है। यही एक ऐसा श्रेष्ठ कर्म है, जिसको लज्जा छोड़कर करना श्रेष्ठ माना गया है। लज्जाको तिलाञ्जलि देकर भजन करनेवाला प्रेमी स्वयं ही पवित्र नहीं होता, वह समस्त विश्वको पवित्र करता है।

रही सम्मान और बड़ाईसे डरनेकी बात सो यह बहुत अच्छी बात है। मनुष्यको मान-बड़ाईसे अवश्य ही डरना चाहिये। यह मीठा विष है, जो प्राप्त करनेके समय मीठा लगनेपर भी वास्तवमें सतत विषमयी मृत्युके चक्रमें डालनेवाला है, परन्तु इसके भयसे भगवन्नामकी याद दिलानेवाली मालाका त्याग कर देना बुद्धिमानी नहीं है। भगवान्‌के सामने आप सदा ही विनम्र और विनयशील होकर रहिये। फिर जगत्‌का सम्मान आपका क्या बिगाड़ेगा और भगवान्‌का नाम लेनेवालेको तो सदा विनम्र रहना ही चाहिये। महाप्रभु श्रीचैतन्यदेवजीने कहा है—

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥

'जो अपनेको तिनकेसे भी अधिक नीचा समझते हैं, जो वृक्षके समान सहनशील (काटने-तोड़ने और जलानेवालेका भी उपकार ही करता है ऐसा) हैं, स्वयं अमानी हैं और सबको मान देते हैं, उन्हींके द्वारा श्रीहरि सदा कीर्तनीय हैं।'

****

नाम-जपकी महत्ता

स्थिति लिखी सो ठीक है। सच्ची बात यह है कि डटकर भजन नहीं बनता। भजन बने बिना विषयोंकी आसक्ति-रूप अन्तःकरणका दोष नष्ट नहीं होता और जबतक विषयासक्ति रहती है, तबतक मन्दिरमें बैठकर ठाकुरजीकी पूजा करनेमें भी विषय ही ठाकुरजी बने रहते हैं, इसलिये वह भगवत्पूजन न होकर प्रकारान्तरसे विषय-सेवन ही होता है। फिर दूकान-कारखाने आदिके काममें तो भगवद्बुद्धि होना बहुत कठिन है। भूलसे कभी-कभी मान लेते हैं—भगवत्-सेवन हो रहा है, परन्तु हृदयके भीतर घुसकर देखनेपर पता लगता है—शुद्ध विषय-सेवन ही है। होना चाहिये जगत्का विस्मरण होकर एकमात्र भगवान्का स्मरण, होता है भगवान्का विस्मरण होकर विषयोंका स्मरण; यही हालत है। कलियुग है, वातावरण बहुत अशुद्ध है। सभी क्षेत्रोंमें दम्भ, दुकानदारी, दिखावापन आ गया है। अतएव भजनके सिवा और कोई भी उपाय नजर नहीं आता। मन लगे, न लगे, किसी प्रकार भी यदि चौबीस घंटेमें सब मिलाकर १८ घंटे नाम-जप होता रहे तो उसके लिये चेष्टा करनी चाहिये। भक्तलोग तो आठ पहरमें साढ़े सात पहर भजन किया करते थे। श्रीचैतन्यचरितामृतमें कहा है—

साढ़े सात पहर जाय भक्तिर साधने।
चारि दण्ड विश्राम ताओ नाहें कोना दीने॥

न काम छोड़कर अलग बैठ सकते हैं, बैठनेसे भी क्या होगा? भजनका अभ्यास न होगा तो नींद, आलस्य और प्रमादमें समय बीतेगा। अब जहाँ बड़े-बड़े कामोंके लिये राग-द्वेष होते हैं, फिर छोटी-छोटी बातोंके लिये होने लगेंगे। घर बड़ा हो या छोटा—है घर ही और राग-द्वेष अपने साथ हैं ही। कहीं भी चले जायँ, कितनी ही बड़ी या छोटी-से-छोटी दुनियामें रहें, ये राग-द्वेष अपना काम करते ही रहेंगे। अतएव अभी जिस दुनियामें हैं, इसीमें रहकर नाप-जप बढ़ाना चाहिये। बस, इसके लिये लाज-शरम छोड़कर अभ्यास डालना चाहिये। मुँहसे उच्चारण होता ही रहे। नाम-जप होता रहेगा तो नामके प्रभावसे बाकी बातें आप ही हो जायँगी। न होंगी तो

आपत्ति नहीं। यदि भगवान्‌का नाम जपते-जपते मृत्यु हो जायगी तो भी जीवन सफल ही है। अधिक क्या लिखूँ।

प्रेमसे होनेवाला नाम-जप

भगवान्‌में प्रेम होनेपर उनका नाम इतना प्रिय लगता है कि फिर भुलाये भी नहीं भूलता, छुड़ाये भी नहीं छूटता। भगवान्‌में प्रेम बढ़े। इसके लिये भगवान्‌से प्रार्थना कीजिये और नाम-जप किसी भी भावसे करते जाइये। जब नाममें यथार्थ रुचि हो जायगी—नामकी पूरी मिठास आ जायगी; फिर तो नाम-जप अपने-आप होगा। फिर संख्याकी जरूरत नहीं होगी। संसार-सागरसे पार होनेका उपाय तो भगवान्‌का सहारा ही है। भगवान्‌ने कहा है—'जो मुझमें मन लगाकर मेरा भजन करते हैं, उनको संसार-सागरसे मैं स्वयं बहुत जल्दी पार कर देता हूँ।'

भजन—साधन और साध्य

राम नाम रटते रहो जब लग घटमें प्रान।
कबहूँ दीनदयाल के भनक परेगी कान॥

भजन करते-करते जब भजनका बाह्य भाव न रहकर बिलकुल आन्तरिक हो जायगा, भजनमें मन रमेगा, उसमें आनन्दकी उपलब्धि होगी, तब यथार्थ भजन होगा। एक भजन होता है साधनरूप, एक होता है साध्य। अभी साधनरूप भी पूरा नहीं हो पाया है। साधनरूप भजन करते-करते जब वह स्वाभाविक होकर अन्तरसे होने लगेगा, जब माला-नियमकी जरा भी जरूरत नहीं रहेगी, अपने-आप ही भजनमें मन लगा रहेगा, तब साध्यरूप प्राप्त होगा, फिर छूटेगा नहीं। यह स्थिति इसी जन्ममें हो सकती है।

हर समय नाम-जप कैसे हो ?

'हर समय भगवान्‌के नामका जप हुआ करे' इसका उपाय पूछा सो स्वाभाविक नाम-स्मरण तो भगवान्‌का महत्त्व जाननेसे ही होता है। भगवान्‌के नामपर जितना-जितना विश्वास, प्रेम बढ़ता है, उतना-उतना

ही नाम-जप अधिक हो सकता है। भगवान्‌के नाममें भूल होनेमें अभ्यासकी कमी ही कारण है; परन्तु प्रधान कारण तो विश्वास और प्रेमकी कमी ही समझना चाहिये। विश्वास तथा प्रेम भी भजन और सत्संगसे ही होते हैं। इसलिये सत्संग तथा नाम-जपरूपी भजनका ही विशेष अभ्यास करना चाहिये। भजन करते-करते—भगवान्‌के नाम-जपका अभ्यास करते-करते विश्वास बढ़कर नाम-जपमें अपने-आप ही प्रगति हो सकती है। नाम-जपमें असली उन्नति तभी समझनी चाहिये, जब नाम-जपमें भूल नहीं हो तथा एक-एक नाममें ऐसा महान् आनन्द आवे कि जिसकी तुलना सम्राट् पदकी प्राप्तिसे भी न हो सके तथा इतना प्रेम उपजे कि नाम-स्मरणके साथ ही रोमाञ्च, अश्रुपात, गद्‌गदवाणी आदि होने लगे।

नाम-जप-सम्बन्धी प्रश्नोत्तर

प्रश्न—वर्षोंसे चेष्टामें लगा हूँ, बहुतेरे साधु-महात्माओंके दर्शन किये, तीर्थोंमें घूमे, मन्त्रोंके अनुष्ठान किये और नाना प्रकारकी साधनाएँ कीं, पर मेरा यह दुष्ट मन किसी प्रकार भी वशमें नहीं होता। शास्त्र और संत कहते हैं कि मनके वशमें हुए बिना भगवान्‌की प्राप्ति नहीं होती और यह बात तो निर्विवाद ही है कि भगवान्‌की प्राप्ति हुए बिना जीवन व्यर्थ है। मैं हताश हो गया, मेरा मन वशमें नहीं होता। क्या मेरे लिये कोई उपाय नहीं है? क्या मैं चाहता हुआ भी भगवान्‌को नहीं पा सकूँगा? भगवान् क्या दया करके मुझ-सरीखे चञ्चल-चित्तको न अपना लेंगे?

उत्तर—बात यह है, सच्ची लगन हो और दृढ़तापूर्वक अभ्यास किया जाय तो मनका वशमें होना असम्भव नहीं है। मन वशमें करनेके बहुत-से उपाय हैं और उनके द्वारा मन अवश्य ही वशमें हो भी सकता है, परंतु भैया! है यह कलियुग, जीवनमें कहीं शान्ति नहीं है। नाना प्रकारकी आधि-व्याधियोंसे मनुष्यका मन सदा घिरा रहता है। इसलिये मन वशमें करनेके साधनमें लगना है बड़ा कठिन और साधनमें लगनेपर भी नाना प्रकारके विघ्नोंके कारण लगन—सच्ची लगन और दृढ़ अभ्यासका होना भी कठिन ही है।

प्रश्न—तो क्या फिर मनुष्य-जीवनकी सफलताका कोई उपाय नहीं है ?

उत्तर—है क्यों नहीं ? वही तो बतला रहा हूँ। वह ऐसा सुन्दर उपाय है, जिसे ब्राह्मणसे चाण्डालतक, परम विद्वान्से वज्रमूर्खतक, स्त्री और पुरुष, सदाचारी और कदाचारी सभी सहज ही कर सकते हैं। वह उपाय है—वाणीके द्वारा भगवान्के नामका रटना। कोई किसी भी अवस्थामें हो, नाम-जप अपने स्वाभाविक गुणसे जपनेवालेका मनोरथ पूर्ण कर सकता है और उसे अन्तमें भगवान्की प्राप्ति करा देता है। और-और साधनोंमें मनके वशमें होने तथा भाव शुद्ध होनेकी आवश्यकता है। भाव (नीयत) के अनुसार ही साधनका फल हुआ करता है। परंतु नाममें यह बात नहीं है। किसी भी भावसे नाम लिया जाय वह तो कल्याणकारी ही है।

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥

इसलिये मन वशमें हो चाहे न हो। कैसा भी भाव हो, तुम विश्वास करके, जैसे बने वैसे ही—भगवान्का नाम लिये जाओ और निश्चय करो कि भगवान्के नामसे तुम्हारा अन्तःकरण निर्मल हुआ जा रहा है और तुम भगवान्की ओर बढ़ रहे हो। नाम लेते रहे, ताँता न टूटा तो निश्चय ही इसीसे तुम अन्तमें भगवान्को पाकर कृतार्थ हो जाओगे।

कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास॥

भावुकताका प्रयोग नाम-जपमें कीजिये

भगवान्के रूपमें अनुराग होनेके लिये इस बातकी बहुत आवश्यकता है कि आप यथासम्भव हर समय भगवन्नाम-जप करें। यदि हर समय न कर सकें तो नियमपूर्वक मालाओंकी गणना करते हुए ही करें। इससे मनकी मलिनता दूर होगी, भगवान्में अनुराग होगा, आत्माको शान्ति मिलेगी और उसके प्रति आपके हृदयमें जो अवैध अनुराग हुआ था उसका पाप भी निवृत्त होगा।

★

हरिनामका महत्त्व

प्रभु श्रीचैतन्यदेव नीलाचल चले जा रहे हैं, प्रेममें प्रमत्त हैं, शरीरकी सुध नहीं है, प्रेममदमें मतवाले हुए नाचते चले जा रहे हैं, भक्त-मण्डली साथ है। रास्तेमें एक तरफ एक धोबी कपड़े धो रहा है। प्रभुको अकस्मात् चेत हो गया, वे धोबीकी ओर चले। भक्तगण भी पीछे-पीछे जाने लगे। धोबीने एक बार आँख घुमाकर उनकी ओर देखा फिर चुपचाप अपने कपड़े धोने लगा। प्रभु एकदम उसके निकट चले गये। श्रीचैतन्यके मनका भाव भक्तगण नहीं समझ सके। धोबी भी सोचने लगा कि क्या बात है ? इतनेमें ही श्रीचैतन्यने धोबीसे कहा—'भाई धोबी ! एक बार हरि बोलो।' धोबीने सोचा, साधू भीख माँगने आये हैं। उसने 'हरि बोलो' प्रभुकी इस आज्ञापर कुछ भी खयाल न करके सरलतासे कहा—'महाराज ! मैं बहुत ही गरीब आदमी हूँ। मैं कुछ भी भीख नहीं दे सकता।'

प्रभुने कहा—'धोबी ! तुमको कुछ भी भीख नहीं देनी पड़ेगी।' सिर्फ एक बार 'हरि बोलो।' धोबीने मनमें सोचा साधुओंका जरूर ही इसमें कोई मतलब है नहीं तो मुझे 'हरि' बोलनेको क्यों कहते ? इसलिये हरि न बोलना ही ठीक है। इसने नीचा मुँह किये कपड़े धोते-धोते ही कहा—'महाराज ! मेरे बाल-बच्चे हैं, मजूरी करके उनका पेट भरता हूँ। मैं हरिबोला बन जाऊँगा तो मेरे बाल-बच्चे अन्न बिना मर जायँगे।'

प्रभुने कहा—'भाई ! तुझे हमलोगोंको कुछ देना नहीं पड़ेगा, सिर्फ एक बार मुँहसे 'हरि' बोलो। हरिनाम लेनेमें न तो कोई खर्च लगता है और न किसी काममें बाधा आती है। फिर हरि क्यों नहीं बोलते, एक बार 'हरि बोलो भाई।'

धोबीने सोचा अच्छी आफत आयी, यह साधु क्या चाहते हैं ? न मालूम क्या हो जाय ? मेरे लिये हरिनाम न लेना ही अच्छा है। यह निश्चय करके उसने कहा, 'महाराज ! तुमलोगोंको कुछ काम-काज तो है नहीं, इससे सभी कुछ कर सकते हो। हम गरीब आदमी मेहनत करके पेट भरते

हैं। बताइये, मैं कपड़े धोऊँ या हरिनाम लूँ।'

प्रभुने कहा—'धोबी ! यदि तुम दोनों काम एक साथ न कर सको तो ये कपड़े मुझे दो। मैं इन्हें धोता हूँ। तुम हरि बोलो।'

इस बातको सुनकर भक्तोंको और धोबीको बड़ा आश्चर्य हुआ। अब धोबीने देखा इस साधूसे तो पिण्ड छूटना बड़ा ही कठिन है। क्या किया जाय जो भाग्यमें होगा—यह सोचकर प्रभुकी ओर देखकर धोबी कहने लगा—'साधू महाराज ! तुम्हें कपड़े तो नहीं धोने पड़ेंगे ? जल्दी बतलाओ मुझे क्या बोलना पड़ेगा, मैं वही बोलता हूँ' अबतक धोबीने मुख ऊपरकी ओर नहीं किया था। अबकी बार उसने कपड़े धोने छोड़कर प्रभुकी ओर देखते हुए उपर्युक्त शब्द कहे।

धोबीने देखा कि साधु करुणाभरी दृष्टिसे उसकी ओर देख रहे हैं और उनकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह रही है। यह देखकर धोबी मुग्ध-सा होकर बोला, 'कहो महाराज ! मैं क्या बोलूँ।' प्रभुने कहा— 'भाई ! बोलो 'हरि बोल'।'

धोबी बोला। प्रभुने कहा—'धोबी ! फिर 'हरि बोल' बोलो, धोबीने फिर कहा—'हरि बोल।' इस प्रकार धोबीने प्रभुके अनुरोधसे दो बार 'हरि बोल, हरि बोल' कहा। तदनन्तर वह अपने आपेमें नहीं रहा और विह्वल हो उठा। बिलकुल इच्छा न होनेपर भी वह अपने-आप ही 'हरि बोल, हरि बोल' पुकारने लगा। ज्यों-ज्यों 'हरि बोल' पुकारता है, त्यों-त्यों विह्वलता बढ़ रही है। पुकारते-पुकारते अन्तमें वह बिलकुल बेहोश हो गया। आँखोंसे हजारों-लाखों अश्रु-धाराएँ बहने लगीं। वह दोनों भुजाएँ ऊपरको उठाकर 'हरि बोल, हरि बोल' पुकारता हुआ नाचने लगा।

भक्तगण आश्चर्यचकित होकर देखने लगे। अब प्रभु नहीं ठहरे। उनका कार्य हो गया। इसलिये वे वहाँसे जल्दीसे चले। भक्तगण भी साथ हो लिये। थोड़ी-सी दूर जाकर प्रभु बैठ गये। भक्तगण दूरसे धोबीका तमाशा देखने लगे। धोबी भाव बता-बताकर नाच रहा है। प्रभुके चले

जानेका उसे पता नहीं है। उसकी बाह्य दृष्टि लुप्त हो चुकी है। भाग्यवान् धोबी अपने हृदयमें गौररूपका दर्शन कर रहा है।

भक्तोंने समझा धोबी मानो एक यन्त्र है। प्रभु उसकी कल दबाकर चले आये हैं और वह उसी कलसे 'हरि बोल' पुकारता हुआ नाच रहा है।

भक्त चुपचाप देख रहे हैं। थोड़ी देर बाद धोबिन घरसे रोटी लायी। कुछ देरतक तो उसने दूरसे खड़े-खड़े पतिका रंग देखा पर फिर कुछ भी न समझकर हँसी उड़ानेके भावसे उसने कहा—'यह क्या हो रहा है ? यह नाचना कबसे सीख लिया ?' धोबीने कोई उत्तर नहीं दिया। वह उसी तरह दोनों हाथोंको उठाये हुए घूम-घूमकर भाव दिखाता हुआ 'हरि बोल' पुकारने और नाचने लगा। धोबिनने समझा पतिको होश नहीं है। उसको कुछ-न-कुछ हो गया है। वह डर गयी और चिल्लाती हुई गाँवकी तरफ दौड़ी तथा लोगोंको बुलाने और पुकारने लगी। धोबिनका रोना और पुकारना सुनकर गाँवके लोग इकट्ठे हो गये। धोबिनने डरते-डरते उनसे कहा कि 'मेरे मालिकको भूत लग गया है।' दिनमें भूतका डर नहीं लगा करता, इसलिये गाँवके लोग धोबिनको साथ लेकर धोबीके पास आये। उन्होंने देखा धोबी बेहोशीमें घूम-घूमकर इधर-उधर नाच रहा है। उसके मुखसे लार टपक रही है। उसको इस अवस्थामें देखकर पहले तो किसीका भी उसके पास जानेका साहस नहीं हुआ। शेषमें एक भाग्यवान् पुरुषने जाकर उसको पकड़ा, धोबीको कुछ होश हुआ और उसने बड़े आनन्दसे उस पुरुषको छातीसे लगा लिया। बस, छातीसे लगनेकी देर थी कि वह भी उसी तरह 'हरि बोल' कहकर नाचने लगा। अब वहाँ दोनोंने नाचना शुरू कर दिया। एक तीसरा गया, उसकी भी यही दशा हुई। इसी प्रकार चौथे और पाँचवें क्रम-क्रमसे सभीपर यह भूत सवार हो गया। यहाँतक कि धोबिन भी इसी प्रेममदमें मतवाली हो गयी। प्रेमकी मन्दाकिनी बह चली, हरिनामकी पवित्र ध्वनिसे आकाश गूँज उठा, समूचा गाँव पवित्र हो गया।

═══ ★ ═══

'हरिःशरणम्' मन्त्रसे महामारी भाग गयी

कलकत्तेके स्वर्गीय श्रीरूढ़मलजी गोयनका बड़े प्रसिद्ध विद्वान् और भगवद्विश्वासी थे। भगवान्‌की लीलासे उनके घरमें कोई नहीं रह गया था। यों वे बड़े शौकीन थे और साथ ही बड़े विद्याव्यसनी थे। संस्कृतके विद्वानोंको उनके यहाँ बड़ा आश्रय मिलता था। वे अपने बड़तल्ला स्ट्रीटके मकानमें रहते थे।

उन दिनों कलकत्तेमें प्रायः प्रतिवर्ष प्लेगकी महामारी आया करती थी और बड़ा विनाश होता था। रूढ़मलजी भी प्लेगसे आक्रान्त हो गये। बहुत तेज ज्वर था और दोनों ओर गिल्टियाँ थीं। घरमें और तो कोई थे नहीं, उनके एक विश्वस्त सेवक थे। वे ही सब देख-भाल करते थे। उस समय डॉ० सर कैलाशचन्द्र बोसका कलकत्तेमें बड़ा नाम था। उन्हें लोग 'विधाता' कहते थे। वे बड़े सफल चिकित्सक थे। दूरसे ही देखकर रोगका निदान कर देते थे। ऐसा माना जाता था। गोयनका-परिवारमें वे घरेलू डॉक्टर थे। संध्याके समय वे रूढ़मलजीको देखने आये और कह गये कि 'इनको सन्निपात हो गया है, रोग असाध्य है और रात्रिको किसी भी समय इनके प्राण जा सकते हैं।'

रूढ़मलजी सब सुन रहे थे। डॉक्टर सर कैलाशचन्द्रके लौट जानेके बाद उन्होंने अपने सेवकसे गङ्गाजल मँगवाया। उससे शरीर पोंछकर कपड़े बदले। भगवान् श्रीकृष्णका बड़ा सुन्दर एक चित्र था। उसको पलंगपर अपने सामने रखवा लिया और चारों तरफ तकिये लगवाकर वे बैठ गये। सेवकसे कहा—'तू किंवाड़ बंद कर लो और बाहर बैठ जाओ। डॉक्टर साहब रातको प्राणत्यागकी बात कह ही गये हैं। यदि प्राण रहेंगे तो मैं जब आवाज दूँ, तब किंवाड़ खोल देना। नहीं तो सबेरे किंवाड़ खोलकर परिवारके अन्य लोगोंको सूचना दे देना। वे अन्त्येष्टिकी व्यवस्था कर देंगे।'

सेवकने आज्ञानुसार बाहरसे किंवाड़ बंद कर दिये।

प्रातःकाल चार बजे उन्होंने आवाज देकर किंवाड़ खुलवाये और सेवकसे कहा कि मेरा शरीर स्वस्थ है। ब्राह्मण-भोजन करवाना है। अतएव तू गङ्गाजीके घाटपर और अपने परिचित विद्वानोंके यहाँ जाकर सौ ब्राह्मणोंको निमन्त्रण दे आओ। वे दस-ग्यारह बजे भोजनके लिये आ जायँ और तुम लौटकर ब्राह्मण-भोजनके लिये रसोईकी व्यवस्था करो। आदेशके अनुसार सारी व्यवस्था हो गयी। ब्राह्मण-भोजन भलीभाँति सम्पन्न हो गया। ब्राह्मण दक्षिणा पाकर लौट गये। उधर श्रीकैलाशबाबू गोयनका-परिवारके ही एक अन्य घरमें रोगी देखने गये थे। उन्होंने पूछा—बाबू रूढ़मलजीकी दाह-क्रिया करके आपलोग कब लौटे? उत्तरमें बताया गया कि वे तो जीवित हैं और स्वस्थ हैं, कैलाशबाबू आश्चर्यमें डूब गये और उन्हें देखनेके लिये उनके मकानपर गये। देखा, तो वे सदाकी भाँति रेशमी पीताम्बर पहने, तिलक लगाये आसनपर बैठे हैं और चौकीपर रखे हुए चाँदीके थालमें ब्राह्मणोंका प्रसाद पा रहे हैं। सर कैलाशने यह देखकर उनसे पूछा कि आप यह सब किसके कहनेसे खा रहे हैं। उन्होंने हँसकर उत्तर दिया—'जिनकी दवासे अच्छा हुआ, उन्हींके कहनेसे।' भगवान्‌का विधान, सर कैलाशबाबूने यही निश्चय किया कि ये सन्निपातमें हैं और जाते समय वे देख-रेख करनेवालोंसे कह गये कि ध्यान रखना किसी भी समय इनका शरीर जा सकता है।

तीन-चार दिन बीत गये। डॉक्टर कैलाशबाबूको कोई समाचार नहीं मिला, तब एक दिन वे स्वयं आये, पता लगा कि रूढ़मलबाबू स्वस्थ हैं। ये उनसे मिले और पूछा—'आप सर्वथा मरणासन्न थे, पर अब आप स्वस्थ हैं। आपने क्या दवा ली, क्या किया जिससे आप आश्चर्यजनकरूपसे स्वस्थ हो गये?' रूढ़मलजीने बताया कि उस दिन आप कह ही गये थे कि मेरे बचनेकी कोई आशा नहीं है। मैंने भी आपके वचनोंके अनुसार यही

समझा। मैंने मनमें विचार किया कि जब मरना ही है, तब भगवान्‌का स्मरण करते हुए क्यों न मरूँ ?' मैंने श्रीमद्भागवतके माहात्म्यमें पढ़ा था कि नारदजीने सनकादिसे कहा है—'आपको कालप्रेरित जरावस्था कभी बाधा नहीं पहुँचाती और आप सदा-सर्वदा पाँच वर्षकी आयुके और नित्य नीरोग इसलिये रहते हैं कि आप रात-दिन निरन्तर '**हरिः शरणम्**' मन्त्रका जप करते रहते हैं।'

मैंने सोचा कि मैं भी इसी मन्त्रका जप करूँ। मैंने गङ्गाजलसे शरीर पोंछकर कपड़े बदलकर भगवान् श्रीकृष्णका यह सुन्दर चित्र (चित्र दिखाकर) सामने रखवा लिया। ज्वर तो बहुत तेज था ही, गिल्टियोंमें दर्द भी बड़ा भयानक था, पर मैं तीनों ओर तकिये लगवाकर किसी तरह बैठ गया और '**हरिः शरणम्**' मन्त्रका जप करने लगा। पता नहीं, कितनी देरतक होशमें रहा। जबतक होशमें रहा, जप चलता रहा। लगभग चार बजे बाह्य चेतना लौटी। मुझे अपना शरीर ठंडा और हलका मालूम दिया। दर्द नहीं था। मैंने हाथ लगाकर देखा कि दोनों ओरकी गाँठें बैठ चुकी हैं। मैंने सोचा—'कहीं बहम न हो।' मैं पलंगसे नीचे उतरकर कमरेमें इधर-उधर घूमा। न दर्द था, न ज्वर। मैंने समझा, यह '**हरिः शरणम्**' मन्त्रका चमत्कार है। ब्राह्मण-भोजन कराना चाहिये, अतएव मैंने ब्राह्मण-भोजनकी व्यवस्था की और ब्राह्मणोंके भोजन करके लौट जानेके बाद मैं उस दिन उनका प्रसाद पा रहा था, उसी समय आप पधारे। मेरी दवा और मेरा डॉक्टर '**हरिः शरणम्**' मन्त्र ही था, जिसने मुझको आश्चर्यजनकरूपसे स्वस्थ कर दिया। डॉक्टर सर कैलाशचन्द्र यह सुनकर आश्चर्यचकित हो गये और उनकी आँखोंमें आँसू छलक आये।

रामनामका फल

दो भाई थे, पर दोनोंके स्वभावमें अन्तर था। बड़ा भाई साधु-सेवी और भगवान्‌के भजनमें रुचि रखनेवाला था। दान-पुण्य भी करता था। सरल हृदय था। इसलिये कभी-कभी नकली साधुओंसे ठगा भी जाता था। छोटा भाई अच्छे स्वभावका था, परन्तु व्यापारी मस्तिष्कका था। उसे साधु-सेवा, भजन और दानके नामपर ठगाया जाना अच्छा नहीं लगता था और वह यही समझता था कि ये सब ठगीके सिवा और कुछ नहीं है। अतः वह बड़े भाईके कार्योंसे सहमत नहीं था। उग्र विरोध तो नहीं करता था, पर समय-समयपर अपनी असम्मति प्रकट करता और असहयोग तो करता ही था।

बड़े भाईको इस बातका बड़ा दुःख था कि उसका छोटा भाई मानव-जीवनके वास्तविक लक्ष्य भगवान्‌की प्राप्तिके साधनमें रुचि न रखकर दुनियादारीमें ही पूरा लगा हुआ है। बड़े भाईकी अच्छी नीयत थी और वह अपने छोटे भाईको भगवान्‌की ओर लगा देखना चाहता था। वह समय-समयपर नम्रता और युक्तियोंसे समझाता था। दूसरे अच्छे लोगोंसे भी कहलवाता, उपदेश दिलवाता था, पर छोटे भाईपर कोई प्रभाव नहीं था।

एक बार अपनी शिष्यमण्डलीसहित एक विरक्त महात्मा उनके शहरमें आये। बड़ा भाई साधुसेवी था ही। वह महात्माकी सेवामें उन्हें एक दिन भिक्षा करानेकी इच्छासे निमन्त्रण देने पहुँचा। वहाँ बात-ही-बातमें उसने अपने छोटे भाईकी स्थिति बतलायी। महात्माने पता नहीं क्या विचारकर उससे कहा कि तुम एक काम करना—जिस दिन तुम्हारा छोटा भाई घरमें रहे, उस दिन हमें भोजनके लिये बुलाना और हमलोगोंको ले जाने और लौटानेके समय एक बाजा साथ रखना। तुम्हारा छोटा भाई जो करे, उसे करने देना, शेष सारी व्यवस्था हम कर लेंगे।

महात्माके आज्ञानुसार व्यवस्था हो गयी। बजते हुए बाजेके साथ महात्मा मण्डलीसहित आ रहे थे। घरमें उस दिन ज्यादा रसोई बनते देखकर और घरके समीप ही बाजेकी आवाज सुनकर छोटे भाईको कुछ संदेह हुआ और उसने बड़े भाईसे पूछा कि 'रसोई किसलिये बन रही है और अपने घरकी ओर बाजेके साथ कौन आ रहा है ?' बड़े भाईने कहा—'एक पहुँचे हुए महात्मा अपनी शिष्यमण्डलीसहित यहाँ पधारे हैं और उन्हें अपने यहाँ भोजनके लिये बाजे-गाजेके साथ लाया जा रहा है। महात्मा भी पहुँचनेवाले ही हैं।' छोटे भाईको ये सब बातें बहुत बुरी लगीं। उसने कहा—'आप ये सब चीजें करते हैं, मुझे तो अच्छी नहीं लगतीं। आप बड़े हैं, आप जो चाहें सो करें। किन्तु मैं यह सब देख नहीं सकता। इसलिये मैं कमरेके अंदर किवाड़ बंदकर बैठ जाता हूँ। आपके महात्मा खा-पीकर चले जायँगे, तब मैं बाहर निकलूँगा। इससे किसी प्रकारका कलह होनेसे घर बच जायगा।' यह कहकर उसने कमरेमें जाकर अंदरसे किवाड़ बंद कर लिये। महात्माजी आये और सारी बातोंको जानकर उन्होंने उस कमरेके बाहरकी साँकल लगा दी। भोजन सम्पन्न हुआ। तदनन्तर महात्माजीने अपनी सारी मण्डली बाजेके साथ लौटा दिया और स्वयं उस कमरेके दरवाजेके पास खड़े हो गये।

'जब लौटते हुए बाजेकी अंदरसे आवाज सुनी, तब छोटे भाईने समझा कि अब सब लोग चले गये हैं।' उसने अंदरकी साँकल हटाकर किवाड़ खोलने चाहे, पर वे बाहरसे बंद थे। उसने जोर लगाया। फिर बार-बार पुकारकर कहा—'बाहर किसने बंद कर दिया है, जल्दी खोलो।' महात्माने किवाड़ खोले और उसके बाहर निकलते ही बड़े जोरसे उसके हाथकी कलाईको पकड़ लिया। महातमामें ब्रह्मचर्यका बल था। वह चेष्टा करके भी हाथ छुड़ा न सका। महात्माने हँसते हुए कहा—''भैया ! हाथ छुड़वाना है तो मुँहसे 'राम' कहो।'' उसने आवेशमें कहा—'मैं यह नाम नहीं लूँगा।' महात्मा बोले—'तो फिर हाथ नहीं छूटेगा।' क्रोध और बलका पूरा प्रयोग

करनेपर भी जब वह हाथ नहीं छुड़ा सका, तब उसने कहा—"अच्छा, 'राम'। छोड़ो हाथ जल्दी और भागो यहाँसे।" महात्मा मुस्कराते हुए यह कहकर बाहर निकल गये कि— 'तुमने 'राम' कहा सो तो बड़ा अच्छा किया, पर मेरी बात याद रखना। इस 'राम'-नामको किसी भी कीमतपर कभी बेचना नहीं।'

यह घटना तो हो गयी, पर कोई विशेष अन्तर नहीं आया। समयपर बड़े भाईकी मृत्यु हो गयी और उसके कुछ दिन बाद छोटे भाईकी भी मृत्यु हो गयी। विषयवासना और विषयकामनावाले लोग विवेकभ्रष्ट हो जाते हैं और जाने-अनजाने छोटे-बड़े पाप करते रहते हैं। पापका फल तो भोगना ही पड़ता है, मरनेके अनन्तर छोटे भाईकी आत्माको यमलोकमें ले जाया गया और वहाँ कर्मका हिसाब-किताब देखकर बताया गया कि 'विषय-वासनावश इस जीवने मनुष्ययोनिमें केवल साधु-अवज्ञा और भजनका विरोध ही नहीं किया और भी बड़े-बड़े पाप किये हैं; पर इसके द्वारा एक बड़ा भारी महान् कार्य हुआ है, इसके जीभसे एक महात्माके सम्मुख एक बार जबरदस्ती रामनामका उच्चारण हुआ है।'

यमराजने यह सुनकर मन-ही-मन उस एक बार राम-नामका उच्चारण करनेवालेके प्रति श्रद्धा प्रकट की और कहा—'इस राम-नामके बदलेमें जो कुछ चाहो सो ले लो। उसके बाद तुम्हें पापोंका फल भोगना पड़ेगा।' उसको महात्माकी बात याद आ गयी। उसने यमराजसे कहा—"मैं राम-नामको बेचना नहीं चाहता, पर इसका जो कुछ भी मूल्य होता हो, वह आप मुझको दे दें।" रामनामका मूल्य आँकनेमें यमराज असमर्थ थे। अतएव उन्होंने कहा—देवराज इन्द्रके पास चलकर उनसे पूछना है कि 'राम-नामका मूल्य क्या होता है। उस जीवने कहा—'मैं यों नहीं जाता। मेरे लिये एक पालकी मँगायी जाय और उसमें कहारोंके साथ आप भी लगें।' उसने यह सोचा कि 'राम-नामका मूल्य जब ये नहीं बता सकते,

तब अवश्य ही वह बहुत बड़ी चीज है और इसकी परीक्षा इसीसे हो जायगी कि ये पालकी ढोनेवाले कहार बनते हैं या नहीं।' उसकी बात सुनकर यमराज सकुचाये तो सही, पर सारे पापोंका तुरंत नाश कर देनेवाले और मन-बुद्धिसे अतीत फलदाता भगवन्नामके लेनेवालेकी पालकी उठाना अपने लिये सौभाग्य समझकर वे पालकीमें लग गये।

पालकी स्वर्ग पहुँची। देवराज इन्द्रने स्वागत किया और यमराजसे सारी बात जानकर कहा—"मैं भी राम-नामका मूल्य नहीं जानता। ब्रह्माजीके पास चलना चाहिये।" उस जीवने निवेदन किया— 'यमराजके साथ आप भी पालकीमें लगें तो मैं चलूँ।' इन्द्रने उसकी बात मान ली और यमराजके साथ पालकीमें वे भी जुत गये। ब्रह्मलोक पहुँचे और ब्रह्माने भी राम-नामका मूल्य आँकनेमें अपनेको असमर्थ पाया और उसी जीवके कहनेसे वे भी पालकीमें जुत गये। उनकी राय भगवान् शङ्करके पास जानेकी रही। इसलिये वे पालकी लेकर कैलास पहुँचे। भगवान् शङ्करने ब्रह्मा, इन्द्र और यमराजको पालकी उठाये आते देखकर बड़ा आश्चर्य प्रकट किया। पूछनेपर सारी बातें उन्हें बतायी गयीं। शङ्करजी बोले—'भाई! मैं तो रात-दिन राम-नाम जपता हूँ, उसका मूल्य आँकनेकी मेरे मनमें कभी कल्पना ही नहीं आती। चलो वैकुण्ठ, ऐसे महाभाग्यवान् जीवकी पालकीमें मैं भी लगता हूँ। वैकुण्ठमें भगवान् नारायण ही कुछ बता सकेंगे।' अब पालकीमें एक ओर यमराज और देवराज लगे हैं और दूसरी ओर ब्रह्मा और शङ्कर कहार बने लगे हैं। पालकी वैकुण्ठ पहुँची। चारों महान् देवताओंको पालकी उठाये आते देखकर भगवान् विष्णु हँस पड़े और पालकी वहाँ दिव्य भूमिपर रख दी गयी। भगवान्ने आदरपूर्वक सबोंको बैठाया। भगवान् विष्णुने कहा—'आपलोग पालकीमें बैठे हुए इस महाभाग जीवात्माको उठाकर मेरी गोदमें बैठा दीजिये।' देवताओंने वैसा ही किया। तदनन्तर भगवान् विष्णुके पूछनेपर भगवान् शङ्करने कहा—'इसने एक बार

परिस्थितिसे बाध्य होकर 'राम'-नाम लिया था। राम-नामका मूल्य इसने जानना चाहा, पर हमलोगोंमेंसे कोई भी राम-नामका मूल्य बतानेमें अपनेको समर्थ नहीं पाया। इसलिये हमलोग इस जीवके इच्छानुसार पालकीमें लगकर आपकी सेवामें उपस्थित हुए हैं। अब आप ही बताइये कि 'राम-नामका मूल्य क्या होना चाहिये।' भगवान् विष्णुने मुस्कराते हुए कहा—'आप-सरीखे महान् देव इसकी पालकी ढोकर यहाँतक लाये और आपलोगोंने इसे मेरी गोदमें बैठाया। अब यह मेरी गोदका नित्य अधिकारी हो गया। रामनामका पूरा मूल्य तो नहीं बताया जा सकता, पर आप इसीसे मूल्यका कुछ अनुमान लगा सकते हैं। आपलोग अब लौट जाइये।' भगवान् विष्णुके द्वारा लिये हुए एक बार राम-नामका इस प्रकार महान् मूल्याभास पाकर शङ्करादि देवता लौट गये।

'एक विरक्त संतने यह कथा लगभग ४५ वर्ष पूर्व कलकत्तेमें मुझको सुनायी थी। घटनाका उल्लेख किस ग्रन्थमें है, मुझको पता नहीं है, पर भगवन्नामकी महिमाका इसमें जो वर्णन आया है, वह वास्तवमें यथार्थ लगता है। घटना चाहे कल्पित हो, पर महिमा तो सत्य है ही।'

'राम न सकहिं नाम गुन गाई।'

नाम-कीर्तन-महिमा

'कल्याण'के एक अङ्कमें श्रीअमरनाथजी शर्मा, एडवोकेटका 'नाम-कीर्तन-महिमा' शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ था। उसमें अखण्ड-नाम-कीर्तनमें बनाये हुए काजलकी महिमा लिखी थी तथा यह भी लिखा था, किसीके माँगनेपर श्रीशर्माजी कुछ काजल उन लोगोंको भेज देंगे, जो श्रद्धा-विश्वासके साथ स्वयं २४ घंटेका अखण्ड कीर्तन करना स्वीकार करेंगे। इस लेखको पढ़कर काजल माँगनेवालोंके इतने अधिक पत्र उनके

पास तथा कल्याण-सम्पादकके पास आये और अबतक आ रहे हैं कि उन सबको काजल भेजना तो दूर रहा, उनका उत्तर लिखना भी कठिन हो गया। स्वयं कीर्तन करनेकी बात तो बहुत थोड़े लोगोंने स्वीकार की, अधिकांशने तो काजल ही माँगा। शर्माजीके पास काजल कितना संग्रहमें था, जो इतने लोगोंको दिया जाता। अतएव लोगोंको निराश ही होना पड़ा। इससे अब काजल मँगानेके लिये श्रीअमरनाथजीको, श्रीस्वामीजीको और कल्याण-सम्पादकको कोई भी सज्जन कृपया पत्र न लिखें। जिनको भगवान् और भगवन्नाममें श्रद्धा-विश्वास हो, वे अपने यहाँ कम-से-कम २४ घंटेतक, हो सके तो तीन या सात दिनोंतक—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

—इन सोलह नामोंके मन्त्रका अखण्ड-कीर्तन करावें। कीर्तनके स्थानपर भगवान्‌की मूर्ति या चित्रके पास शुद्ध घृतका दीपक रखें। दीपक अखण्ड रहे यानी जबतक कीर्तन होता रहे, तबतक बुझे नहीं और उसी दीपकसे काजल बना लें। काजल बनाना गृहस्थमें प्रायः सभी जानते हैं। दीपकके ऊपर टेढ़ा सकोरा रख दें अथवा एक हाँड़ीमें पाँच-सात छेद करके उस हाँड़ीको दीपकपर रख दें। काजल बनता जायगा और दीपक बुझेगा नहीं। घी बीच-बीचमें दीपकमें देते रहें, जरूरत हो तो बत्ती भी बदलते रहें, पर खयाल रखें, बत्ती बुझने न पावे। दूसरी बत्ती जला देनेपर ही पहलीको निकालें।

अखण्ड-कीर्तनकी विधि यह है कि कम-से-कम दो-दो आदमी लगातार दो घंटेतक कीर्तन करते रहें, (आदमी कम हों और कर सकें तो चार घंटेतक दो आदमी कीर्तन करते रहें) उनका समय पूरा होते ही दूसरे दो सज्जन आ जायँ और वे जब कीर्तन करने लगें, तब पहलेके दोनों चले जायँ। यों कीर्तन जारी रहे। दो घंटे दिनमें और दो घंटे रातमें वही आदमी

कीर्तन करें तो २४ आदमियोंसे अखण्ड-कीर्तन हो सकता है। घरके, मुहल्लेके लोगोंको मिलकर कीर्तन करना चाहिये। स्त्रियाँ भी कीर्तन कर सकती हैं, परन्तु उनके साथ पुरुष नहीं रहना चाहिये—इस प्रकार कीर्तन करके काजल बनाया जा सकता है और श्रद्धा-भक्ति तथा विश्वास होगा तो वह काजल श्रीअमरनाथजीके लेखमें बताये हुए काजलसे कम महत्त्वका नहीं होगा। लोगोंको पत्र न लिखकर कीर्तन करने-करानेका श्रम स्वीकार करके स्वयं काजल बना लेना चाहिये।

श्रीभगवन्नाम-महिमाके कुछ पद

(१)

(राग जोगिया—ताल मूल)

वन्दन नित्य हृदयसे 'भगवन्नाम' मोह-नाशक सुख-धाम।
परमहंस-ऋषि-मुनि-तापसजन सिद्ध-योगियोंका विश्राम॥
भक्तोंके-प्रेमीजन-मनके जीवनका शुचि परमाधार।
पाप-ताप-नाशक जन-जनका परम पुण्यमय शान्ताकार॥
सभी साधनोंका परमाश्रय सर्व-सिद्धिदायक शुभ-मूल।
स्पर्शमात्रसे जल जाते सब अघ जैसे पावकसे तूल॥
पिता-पितामह-माता-धाता, भर्ता, त्राता, गुरु, आचार्य।
जो जैसे भजता, उसका बन वैसे ही करता सब कार्य॥
करता सिद्ध सहज ही सत्वर जनके धर्म, काम, शुचि अर्थ।
देता मोक्ष, सिद्ध करता फिर प्रेम दिव्य पञ्चम पुरुषार्थ॥

(२)

(श्रीभगवन्नामाष्टक)

मधुरन महँ सब तें मधुर, सुभ महँ अति सुभ धाम।
पावन महँ पावन परम, केवल हरि को नाम॥
ब्रह्म तें तृणतक सकल जग माया को काम।
सत्य सत्य पुनि सत्य जग, केवल हरि को नाम॥
मात-पिता, गुरु-बन्धु सो, सब बिधि प्रानाराम।
जो सिखवै सुमिरन सदा, केवल हरि को नाम॥
स्वासन को विश्वास नहिं कब ह्वै जायँ बिराम।
प्रथमहि ते कीर्तन करो, केवल हरि को नाम॥
बसहिं सदा तेहि स्थान महँ श्रीहरि पूरन-काम।
हरि-जन नित जहँ गावहीं, केवल हरि को नाम॥
अहो दुःख अति दुःख यहि परम दुःख दुख-ठाम।
काँच-हेतु भूल्यो रतन, केवल हरि को नाम॥
भरो श्रवन महँ, जपो नित, श्रीहरि-नाम ललाम।
गावो गावो नित्य प्रति, केवल हरि को नाम॥
तृन-सम कर सब विश्व कहँ, राजत सब को स्याम।
चिदानंदमय, सुद्ध-घन, केवल हरि को नाम॥

(३)

(राग-बिहाग)

राम राम राम राम राम राम राम
राम राम राम राम राम राम राम।
जगविश्राम ! मंगलधाम ! पूरणकाम ! सुन्दर नाम॥
योग-जप-तप-व्रत नियम-यम, यज्ञ-दान अपार।
राम-सम नहिं एक साधन, राम सब आधार॥
सब मिल कहो जय जय राम॥ राम०॥

राम गुरु, पितु-मातु रामहि, राम सुहृद उदार।
राम स्वामी, सखा रामहि, राम प्रिय परिवार॥
सब मिल कहो जय जय राम॥ राम॰॥
राम जीवन, राम तन-मन, राम धन-जन दार।
राम सुत, सुख-साज रामहि, राम प्राणाधार॥
सब मिल कहो जय जय राम॥ राम॰॥
राम राग, विराग रामहि, राम स्नेहागार।
राम प्रेमद, राम प्रेमिक, प्रेम-पारावार॥
सब मिल कहो जय जय राम॥ राम॰॥
राम बिधि, शिव राम, पालक विष्णु विश्वाधार।
राममय जग, राम जगमय, रामही विस्तार॥
सब मिल कहो जय जय राम॥ राम॰॥

(४)

(राग ईमन—ताल त्रिताल)

नारायण शुभ नाम दिव्य है मङ्गलमय कल्याणाऽधार।
आर्ति-विपत्ति-ताप-अघ-तम-हर दिव्य सुख-सुधा-पारावार॥
हो यदि कहीं, किसी भी कारण, शुभ नारायण नामोच्चार।
हरि-पार्षद आयें, हो भीत भगें यम-दूत भीषणाकार॥
नारायण शुभ नाम दीन-जन-आश्रय मधुमय मोक्ष-द्वार।
भुक्ति-मुक्ति शुचि-शान्ति नित्य पर-धाम-सुदायक सहज उदार॥
भाव-कुभाव-अनख, आतुरता-भय-संकेत-हास-मनुहार।
किसी हेतु 'नारायण' कहनेपर हो संकटसे उद्धार॥

(५)

(राग आसावरी—ताल रूपक)

साधन नाम-सम नहिं आन।
जपत सिव-सनकादि, सारद-नारदादि सुजान ॥
नाम के बल मिटत भीषन असुभ भाग्य-बिधान।
नाम-बल मानव लहत सुख सहज मन-अनुमान ॥
नाम टेरत टरत दारुन बिपति, सोक महान।
आर्त्त करि, नर-नारि, ध्रुव सब रहे सुचि सहिदान ॥
नाम के परताप तें जल पर तरे पाषान।
नाम-बल सागर उलाँघ्यो सहज ही हनुमान ॥
नाम-बल संभव सकल जे कछु असंभव जान।
धन्य ते नर, रहत जिनके नाम-रट की बान ॥
पाप-पुंज प्रजारिबे-हित प्रबल पावक-खान।
होत छिन महँ छार, निकसत नाम जान-अजान ॥
नाम-सुरसरि में निरंतर करत जे जन न्हान।
मिटत तीनों ताप, मुख नहिं होत कबहुँ मलान ॥
नाम-आश्रित जनन के मन बसत नित भगवान।
जरत खरत कु-बासना सब तुरत लज्जा-मान ॥
नाम-जीवन, नाम अमरित, नाम सुख को थान।
नाम-रत जे नाम-पर ते पुरुष अति मतिमान ॥
नाम नित आनंद-निरझर, अति पुनीत पुरान।
मुक्त सत्वर होत जे जन करत सादर पान ॥
नाम जपत सुसिद्ध जोगी बनत समरथवान।
नाम तें उपजत सु-भगति, बिराग सुभ बलवान ॥

नाम के परताप दीखत प्रकृति-दीप बुझान।
नाम-बल ऊगत प्रभामय भानु तत्त्व-ज्ञान॥
नाम की महिमा अमित, को सकै करि गुन-गान।
राम तें बड़ नाम, जेहि बल बिकत श्रीभगवान॥

(६)

(राग आसावरी)

भली है राम-नाम की ओट।
जिन्ह लीन्हीं तिनके मस्तक तें पड़ी पाप की पोट॥
राम-नाम सुमिरन जिन्ह कीन्हो लगी न जम की चोट।
अन्तःकरन भयो अति निरमल, रही तनिक नहिं खोट॥
राम-नाम लीन्हें तें जर गइ माया-ममता-मोट।
राम-नाम तें मिले राम, जग रह गयो फोकट-फोट॥

(७)

(होरी काफी—ताल दीपचन्दी)

भूल जग के विषयन कों, जप मन हरि को नाम॥
दीनबंधु हरि करुना-सागर, पतितन के विश्राम।
आपद-अंधकार महँ श्रीहरि पूरन-चंद्र ललाम॥
पाप-ताप सब मिटै नाम तें, नास होहिं सब काम।
जम के दूत भयातुर भागैं, सुनत नाम सुख-धाम॥
भाग्यवान जे जपत निरंतर नाम सदा निष्काम।
निरख सुखी सत्वर हों मूरति हरि की जग-अभिराम॥
भाग्यहीन जिन्ह के मन-मुख महँ बसत न हरिको नाम।
नरक-रूप जग जीवन तिन्ह को भूमि-भार अघ-धाम॥

(८)

(राग भैरवी—ताल झपताल)

कर मन हरि को ध्यान, राम-गुन गाइये।
प्रेम-मगन सब देह सुरति बिसराइये॥
हरि-संकीर्तन करत अश्रुधारा बहै।
गदगद होवे कंठ, परम सुख सो लहै॥
पुलकित तनु हरि-प्रेम हृदय जो नाचहीं।
सुर-मुनि ताकी अनुपम गति नित जाचहीं॥
नाम लेत मुख हँसत, कबहुँ कर रूदनहीं।
ताको हिय नित करहिं दयामय सदनहीं॥

(९)

(राग पीलू-बरवा—ताल धुमाली)

बन्धुगणो! मिल कहो प्रेमसे
'यदुपति व्रजपति श्यामा-श्याम।'
मुदित चित्तसे घोष करो पुनि
'पतीतपावन राधेश्याम॥'
जिह्वा-जीवन सफल करो कह—
'जय यदु-नन्दन, जय-घनश्याम।'
हृदय खोल बोलो, मत चूको—
'रुक्मिणि-वल्लभ श्यामा-श्याम॥'
नव-नीरद-तनु, गौर मनोहर,
'जय श्रीमाधव जय बलराम।'
उभय सखा मोहनके प्यारे—
'जय श्रीदामा, जयति सुदाम॥'

परमभक्त निष्काम-शिरोमणि—
'उद्धव-अर्जुन शोभा-धाम।'
प्रेम-भक्ति-रस-लीन निरन्तर
'विदुर, विदुर-गृहिणी अभिराम॥'
अति उमंगसे बोलो सन्तत—
'यदुपति व्रजपति श्यामा-श्याम।'
मुक्तकंठसे सदा पुकारो—
'पतीतपावन राधेश्याम॥'

(१०)

(राग पीलू-बरवा)

बन्धुगणो ! मिल कहो प्रेमसे—
'रघुपति राघव राजाराम।'
मुदित चित्तसे घोष करो पुनि—
'पतीतपावन सीताराम॥'
जिह्वा-जीवन सफल करो कह—
'जय रघुनन्दन, जय सियाराम।'
हृदय खोल बोलो मत चूको—
'जानकिवल्लभ सीताराम॥'
गौर रुचिर, नव घनश्याम छबि,
'जय लक्ष्मण, जय जय श्रीराम।'
अनुगत परम अनुज रघुबरके—
'भरत-शत्रुहन शोभा-धाम॥'
उभय सखा राघवके प्यारे—
'कपिपति, लंकापति अभिराम।'

***

परम भक्त निष्काम-शिरोमणि
'जय श्रीमारुति पूरण-काम ॥'
अति उमंगसे बोलो संतत—
'रघुपति राघव राजाराम।'
मुक्तकंठ हो सदा पुकारो—
'पतीतपावन सीताराम ॥'

(११)

(राग भैरवी—ताल दादरा)

राम राम राम भजो, राम भजो, भाई।
राम-भजन-हीन जनम सदा दुखदाई ॥
अति दुरलभ मनुज-देह सहजही में पाई।
मूरख रह्यो राम भूल विषयन मन लाई ॥
बालकपन दुख अनेक भोगत ही बिताई।
स्त्री-सुत-धन की अपार चिंता तरुनाई ॥
रात-दिवस पसु की ज्यों इत-रह्यो धाई।
तृसना की बेलि बढ़ी पाप-बारि पाई ॥
बात-पित्त-कफहु बढ्यो, दुखद जरा आई।
इंद्रिन की शक्ति घटी, सिर धुनि पछिताई ॥
इतनेहि में कठिन काल घेरि लियो आई।
मृत्यु-निकट देखि-देखि अति ही भय पाई ॥
सोच करत मन-ही-मन अतिसै पछिताई।
हाय मैं न भज्यो राम, कहा कर्‌यो माई ॥
मृत्यु प्रान-हरन करत कुटुँब तें छुड़ाई।
महादुःख रह्यो छाय, बिफल सब उपाई ॥

पापन के फल-स्वरूप बुरी जोनि पाई।
दु:ख-भोग करत पुनि नरकन महँ जाई॥
बार-बार जनम-मृत्यु, ब्याधि अरु बुढ़ाई।
झेलत अति कठिन कष्ट, शांति नाहिं पाई॥
यहि विधि भव-दुख अपार बरने नहिं जाई।
भव-भेषज राम-नाम, श्रुति-पुरान गाई॥
राम-नाम जपत त्रिबिध ताप जग-नसाई।
राम-नाम मँगल-करन सब बिधि सुखदाई॥
प्रेम-मगन मन तें सकल कामना बिहाई।
जोइ जपत राम-नाम सोई मुकति पाई॥

(१२)

(राग बिहाग—ताल दादरा)

प्रेम-मुदित मन से कहो राम राम राम।
श्री राम राम राम, श्री राम राम राम॥
पाप कटैं, दु:ख मिटैं, लेत राम-नाम।
भव-समुद्र सुखद नाव एक राम-नाम॥
परम सांति-सुख-निधान नित्य राम-नाम।
निराधार को अधार एक राम-नाम॥
परम गोप्य, परम इष्ट मंत्र राम-नाम।
संत-हृदय सदा बसत एक राम-नाम॥
महादेव सतत जपत दिव्य राम-नाम।
कासि मरत मुक्त करत कहत राम-नाम॥
मात-पिता, बंधु-सखा, सबहि राम-नाम।
भक्त-जनन-जीवन-धन एक राम-नाम॥

(१३)

(राग आसावरी—तीन ताल)

भजौ नित राधा नाम उदार।
जाहि स्याम नित रटत रहत हिय भरि उल्लास अपार ॥
चौदह भुवन-लोकत्रय-स्वामी अखिल जगत-आधार।
सोइ नित जाके हाथ बिकानो, करत रहत मनुहार ॥
जाके दरस हेतु मुनि तरसत जानि सार-कौ-सार।
सुमिरौ सोइ राधा-पद-पंकज निसि-दिन बारंबार ॥

(१४)

(होरी काफी—ताल दीपचन्दी)

और सब भूल भले ही, श्रीहरिनाम न भूल ॥
श्रीहरिनाम सुधामय सब के हित, सबके अनुकूल।
श्रीहरिनाम-भजन तें पहुँचत भव-सागर पर-कूल ॥
रोग, सोक, संताप, पाप सब, जैसे सूखी तूल।
भगवन्नाम प्रबल पावक तें जरैं सकल जड़-मूल ॥
जिन्ह हरिनाम-भजन नहिं कीन्हों जीवन तिन को धूल।
भक्ति रसाल मिलै नहिं कबहूँ, बोये विषय-बबूल ॥
श्रीहरिनाम भयो जिनके मन जग-जीवन को मूल।
तिन्ह को धन्य जगत महँ जीवन पातक-पथ-प्रतिकूल ॥

(१५)

(राग सोहनी)

चाहता जो परम सुख तू, जाप कर हरिनामका।
परम पावन, परम सुन्दर, परम मङ्गलधामका ॥
लिया जिसने है कभी हरि-नाम भय-भ्रम-भूलसे।
तर गया वह भी तुरत, बन्धन कटे जड़-मूलसे ॥

हैं सभी पातक पुराने घास सूखेके समान।
भस्म करनेको उन्हें हरिनाम है पावक महान॥
सूर्य उगते ही अँधेरा नाश होता है यथा।
सभी अघ हैं नष्ट होते नामकी स्मृतिसे तथा॥
जाप करते जो चतुर नर सावधानीसे सदा।
वे न बँधते भूलकर यम-पाश दारुणमें कदा॥
बात करते, काम करते, बैठते-उठते समय।
राह चलते नाम लेते बिचरते हैं वे अभय॥
साथ मिलकर प्रेमसे हरि-नाम करते गान जो।
मुक्त होते मोहसे कर प्रेम-अमृत पान सो॥

(१६)

(राग आसावरी—ताल धुमाली)

मेरे एक राम-नाम आधार।
ढूँढ थक्यो पर मिल्यो न दूजो, भीर परेको यार॥
देखे-सुने अनेक महीपति, पंडित, साहूकार।
जद्यपि नीति-धरम-धन-संयुत, नहिं अस परम उदार॥
मात-पिता, भ्राता, नारी, सुत, सेवक बंधु अपार।
बिपद-काल महँ कोउ न संगी, स्वारथमय संसार॥
करि करुना दयालु गुरु दीन्हों, राम-नाम सुख-सार।
दुस्तर भव-सागर महँ अटक्यो बेरो उतर्‌यो पार॥

★